Con. 3. VIII-15.49
320

अंक 8
संख्या 15

शुक्रवार
3 जून
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप
[अनुच्छेद 168 से 171 तथा 109 से 111 पर विचार] ...883-942

भारतीय संविधान सभा

शुक्रवार, 3 जून सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः आठ बजे, अध्यक्ष महोदय (माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का प्रारूप—(*जारी*)

अनुच्छेद 168

***अध्यक्ष:** हम अनुच्छेद 168 को उठायेंगे।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): इसके पूर्व कि अनुच्छेद 168 उठाया जाये, मैं अध्यक्ष महोदय का ध्यान इस ओर दिलाना चाहता हूं कि एक संशोधन इस आशय का है कि एक नवीन अनुच्छेद 168-ए प्रविष्ट किया जाये। अनुच्छेद 168 से सम्बन्धित दो संशोधनों अर्थात् संशोधन संख्या 2440 और 2441 के फलस्वरूप यह प्रश्न उठता है। यह अनुभव किया गया है कि उचित यह होगा कि इन प्रश्नों को एक पृथक् अनुच्छेद 167 (क) में समाविष्ट किया जाये। किन्तु मेरे विचार से सभा को प्रस्तावित अनुच्छेद पर विचार करने का समय नहीं मिला। इसलिये यदि अध्यक्ष महोदय अनुमति दें तो मैं यह सुझाव उपस्थित करना चाहता हूं कि इसे आगे किसी तिथि के लिये स्थगित किया जाये ताकि सभा को इस नवीन अनुच्छेद के विषय को अच्छी प्रकार समझने के लिये पर्याप्त समय मिल जाये।

***अध्यक्ष:** मैं यह विचार कर रहा था कि इसे संशोधन संख्या 2441 के साथ उठाया जाये। यदि इसे स्थगित किया जा रहा है तो ठीक ही है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** बात यह है कि उससे संशोधन संख्या 2441 का आशय बहुत कुछ पूरा हो जाता है किन्तु जो प्रक्रिया निर्धारित की गई है वह भिन्न है। मेरे विचार से अच्छा यह होगा कि सदस्यों को उसे समझने के लिये कुछ समय दिया जाये। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि इसे स्थगित किया जाये और आगे किसी अवसर पर उठाया जाये।

***अध्यक्ष:** यदि सदस्यों को इस पर आपत्ति नहीं है तो मैं इसे स्थगित कर सकता हूं।

एक नये संशोधन की सूचना मिली है जिसका आशय यह है कि एक नवीन अनुच्छेद अर्थात् अनुच्छेद 167(क) प्रविष्ट किया जाये, जो सदस्यों की निर्योग्यता के बारे में है

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[अध्यक्ष]

और यह सुझाव उपस्थित करता है कि किसी सदस्य की निर्योग्यता के प्रश्न पर एक विशेष प्रकार से विचार किया जाये। सुझाव यह है कि उसे स्थगित किया जाये। सूचना संशोधन संख्या 2441 के बारे में दी गई है, जो अनुच्छेद 168 के सम्बन्ध में है। किन्तु उस पर यथोचित रूप से इसी समय विचार किया जा सकता है। परन्तु इरादा यह है कि उसे इस समय स्थगित किया जाये ताकि सदस्य उस पर विचार कर सकें।

अब हम अनुच्छेद 168 को उठायेंगे। प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 168 संविधान का अंग बना लिया जाये।''

मेरे विचार से पहले तीन संशोधन अर्थात् संशोधन संख्या 2434, 2435 और 2436 मसौदे में शुद्धि करने के उद्देश्य से उपस्थित किये गये हैं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): जी हां, उनका उद्देश्य मसौदे में शुद्धि करना है।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 2437। इसका आशय प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद से अर्थात् अनुच्छेद 167 (क) से पूरा हो जाता है। हम इसे छोड़ सकते हैं।

(संशोधन संख्या 2438 और 2439 उपस्थित नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 2440 और 2441 : ये प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद के सम्बन्ध में हैं। हम इन्हें छोड़ सकते हैं।

अनुच्छेद 168 के सम्बन्ध में कोई संशोधन उपस्थित नहीं किया गया है। क्या इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में कोई सदस्य महोदय बोलना चाहते हैं।

***श्री लक्ष्मीनारायण साहू** (उड़ीसा : जनरल): सभापति जी, यह 168 आर्टिकिल यहां रखने के लिये कुछ जरूरत है, ऐसा मुझे मालूम नहीं होता है, क्योंकि कोई आदमी जो इस असेम्बली में घुस जायेंगे उनके लिये तो बहुत प्रबंध है और जब ऐसे आदमी मेम्बर नहीं हैं और मेम्बर की जो क्वालीफिकेशन है, यहां बनने की और यह जब उनमें मौजूद नहीं होंगी, तब भी यहां आकर घुस जायेंगे। तो उसके लिये तो प्रबंध है कि उनको निकाल दे सकते हैं और जब उनके ऊपर कुछ दंड दिया जायेगा तो उनको क्रिमिनल ट्रेसपास के लिये दंड दिया जा सकता है। उसके लिये एक स्वतंत्र ऐसा प्रबंध करना मुझे ठीक नहीं मालूम होता है। हम ऐसा आर्टिकिल ज्याादा रख कर क्या फायदा उठायेंगे, यह मैं सोच नहीं सकता हूं। उनको तो क्रिमिनल ट्रेसपासर्स में दंड देना चाहिये। इतना ही मैं कहना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 168 संविधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 168 संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 169

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 169 को उठाते हैं।

(संशोधन संख्या 2442, 2443 और संशोधन पर संशोधन संख्या 141 और 2444 उपस्थित नहीं किये गये।)

संशोधन संख्या 2445।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 169 के खंड (4) में 'a House of the Legislature of a State' (राज्य के विधानमंडल के किसी सदन) शब्दों के बाद 'or any committee thereof' (अथवा उसकी किसी समिति) शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

श्रीमान्, अनुच्छेद 169 के खंड (4) में मेरा संशोधन प्रविष्ट होने पर वह इस प्रकार हो जायेगा:

> ''The provisions of clauses (1), (2) and (3) of this article shall apply in relation to persons who by virtue of this Constitution have the right to speak in, and otherwise take part in the proceedings of, a House of the Legislature of a State or any Committee thereof as they apply in relation to members of that Legislature.''
>
> (जिन व्यक्तियों को इस संविधान के आधार पर राज्य के विधानमंडल के किसी सदन अथवा उसकी किसी समिति में बोलने का, अथवा अन्य प्रकार से उसकी कार्यवाही में भाग लेने का, अधिकार है, उनके सम्बन्ध में खंड (1), (2) और (3) के उपबंध उसी प्रकार लागू होंगे जिस प्रकार वे उस विधानमंडल के सदस्यों के सम्बन्ध में लागू हैं।)

इस संशोधन का उद्देश्य यह है कि यदि किसी व्यक्ति से, भले ही वह विधान सभा का सदस्य न हो, विधानमंडल द्वारा निर्मित किसी समिति में कार्य करने अथवा उसके समक्ष उपस्थित होने के लिये कहा जाये तो उसमें वह जो कुछ करे या कहे उसके सम्बन्ध में उसे वही विशेषाधिकार प्राप्त होंगे जो विधानमंडल के सदस्यों के होंगे। यदि विधानमंडल द्वारा निर्मित समिति के समक्ष उपस्थित होने अथवा उसमें कार्य करने के लिये आमंत्रित व्यक्तियों को इस प्रकार की उन्मुक्ति प्राप्त न होगी तो उनके लिये अबाध तथा स्वतंत्र रूप से कार्य करना कठिन हो जायेगा। केन्द्रीय संसद द्वारा निर्मित समिति के समक्ष उपस्थित होने वाले इस प्रकार के व्यक्तियों के विशेषाधिकारों के सम्बन्ध में सभा मेरे एक संशोधन को स्वीकार कर चुकी है। इसी आधार पर, मेरा यह निवेदन है कि यह संशोधन भी स्वीकार कर लिया जाये।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 2446 और 2447 उपस्थित नहीं किये गये हैं। संशोधनों और अनुच्छेद पर अब विचार-विमर्श हो सकता है।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, आपकी अनुमति से मैं इस अनुच्छेद के खंड (3) के बारे में कुछ शब्द कहना चाहता हूं। मैं उन सब बातों को नहीं दुहराना चाहता जो मैंने पिछले एक अवसर पर कहीं थी जबकि हम इसी के समान एक खंड पर विचार कर रहे थे, जो केन्द्रीय संसद के सदस्यों के विशेषाधिकारों के सम्बन्ध में था। किन्तु उस अवसर पर हमने जो खंड स्वीकार किया था उसकी लोगों में तथा समाचार-पत्रों में क्या प्रतिक्रिया हुई उसकी ओर में डा. अम्बेडकर का तथा इस सभा का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं। मुझे इस सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं है कि डा. अम्बेडकर सचेत रहते हैं और प्रतिदिन कुछ महत्त्वपूर्ण समाचार पत्रों को पढ़ लेते हैं अथवा कम से कम अपने सामने पढ़वा लेते हैं। इस सभा ने जैसे ही संसद के सदस्यों के विशेषाधिकार सम्बन्धी खंड को स्वीकार किया वैसे ही अधिकांश समाचार पत्रों ने, हमने उसे जिस ढंग से स्वीकार किया था उसकी आलोचना की। हिन्दुस्तान टाइम्स जैसे कट्टरपन्थी पत्र ने भी यह लिखा था कि अपने देश के लिये एक लिखित संविधान का मसौदा बनाते हुए हम यह बहुत ही अनुचित बात कर रहे हैं कि हम कोई ऐसा कानून बनायें अथवा अपने संविधान में कोई ऐसी बात प्रविष्ट करें जिसका किसी अन्य देश के अलिखित संविधान से सम्बन्ध हो। सभा को यह विदित है कि ब्रिटेन का संविधान अलिखित है, भले ही यह उपबंध किसी पत्र में उल्लिखित हो। मुझे विश्वास है कि जिस समय वह खंड स्वीकार किया गया था, हमारे संविधान के पंडितों ने, हमारे विशेषज्ञों ने, डा. अम्बेडकर, श्री अल्लादी तथा उनकी विचारधारा के अन्य लोगों ने यह समझ कर आत्मसंतोष कर लिया था कि चूंकि कामन्स सभा संसदों की जननी है इसलिये सभा की कुछ बातों का उल्लेख करके हम संसार में सब से उत्तम बात कर रहे हैं, यद्यपि हम में से बहुत से लोग उस सभा के बारे में कुछ नहीं जानते और इसे अपना सौभाग्य भी समझते हैं। उस अवसर पर जो सदस्य बोले थे उनमें से अधिकांश जानते भी न थे कि कामन्स सभा के सदस्यों के विशेषाधिकार क्या हैं और कुछ पत्रों ने तथा कुछ आलोचकों ने इस कार्य के सम्बन्ध में यह कहा था कि मसौदा-समिति ने अपने काम में टालमटोल दिखाई हैं वह कम से कम एक अनुसूची का मसौदा तैयार कर सकती थी और उसे संविधान के अन्त में प्रविष्ट कर सकती थी और उसमें यह दिखा सकती थी कि कामन्स सभा के सदस्यों के विशेषाधिकार क्या हैं। ऐसा नहीं किया गया और केवल इस आशय का एक खंड रख दिया गया कि जो विशेषाधिकार वहां प्राप्त हैं वे यहां भी प्राप्त होंगे। यह कोई नहीं जानता कि वहां कौन से विशेषाधिकार प्राप्त हैं, इसलिये यह भी कोई नहीं जानता कि हमें कौन से विशेषाधिकार प्राप्त होंगे। श्री मावलंकर महोदय के सभापतित्व में हमारी संसद ने प्रयोगात्मक रूप से प्रक्रिया के कुछ नियमों को स्वीकार किया है और उसने एक विशेषाधिकार समिति को भी नियुक्त किया है अथवा नियुक्त करने जा रही है। मुझे आश्चर्य है कि हमने अपने संविधान में इस लाभप्रद उपबंध को समाविष्ट करने की बुद्धिमत्ता क्यों नहीं दिखाई कि केन्द्रीय संसद के सदस्य होने के नाते हमें जो विशेषाधिकार प्राप्त हैं वे राज्यों के विधानमंडलों के सदस्यों को भी प्राप्त होंगे।

यदि किसी संविधान का उल्लेख करना आवश्यक ही थी तो कम से कम एक अलिखित संविधान का अर्थात् ब्रिटेन के संविधान का उल्लेख न करना चाहिये था और ऐसा करके मसौदा-समिति ने बड़ी नासमझी का काम किया है। अमेरिका का लिखित संविधान था ही जबकि हम में से कुछ लोगों को इसका गर्व भी है कि हमने बहुत सी बातें अमेरिका के संविधान से ली हैं। क्या मैं डा. अम्बेडकर से पूछ सकता हूं कि क्या इंग्लैंड की कामन्स सभा के सदस्यों को अमेरिका की प्रतिनिधि सभा के विशेषाधिकारों से अधिक विशेषाधिकार प्राप्त हैं? यदि ऐसी बात है तो मैं इस सम्बन्ध में सूचना चाहता हूं। यदि यह बात नहीं है तो मेरे विचार से किसी अलिखित संविधान का उल्लेख करना उचित नहीं है। मैं तो यह चाहता हूं कि किसी भी अन्य संविधान का उल्लेख न किया जाये। यदि आवश्यक हो तो हमें अपने संविधान में एक अनुसूची समाविष्ट कर देनी चाहिये और इस अनुच्छेद में यह लिख देना चाहिये कि अधिकार और विशेषाधिकार अन्त में अनुसूची में उल्लिखित हैं। संभवत: इच्छा यह है कि विषय को सरल बनाया जाये किन्तु किसी विषय की अत्यधिक सरल बनाना हमेशा ठीक नहीं होता है। यदि संक्षिप्त विवरण की दृष्टि से इस खंड को सरल बनाने की आवश्यकता थी तो किसी अन्य विकल्प पर विचार किया जा सकता था और संसार के किसी देश के लिखित संविधान का उल्लेख किया जा सकता था। वह मुझे इतना अप्रिय न होता। किन्तु मेरी तो यह इच्छा है कि किसी समय भी संविधान में स्पष्ट शब्दों में एक अनुसूची प्रविष्ट की जाये जिसमें यह बताया जाये कि विधानमंडलों और संसद के सदस्यों के विशेषाधिकार क्या हैं? मेरे विचार से इस खंड विशेष को बदल कर फिर से लिखा जाना चाहिये। पहले एक अवसर पर हमने इसी प्रकार का एक खंड स्वीकार किया है किन्तु यदि हमने एक बार गलती की है तो हमें उसे बार-बार न दुहराना चाहिये। इसलिये डा. अम्बेडकर से तथा मसौदा-समिति के उनके बुद्धिमान सहकारियों से मेरा यह निवेदन है कि वे इस खंड को दुहरायें और यदि वे यह समझें कि बुद्धिमानी इसी में है तो उसे भी तदनुसार दुहरा कर समझदारी का परिचय दें।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** अध्यक्ष महोदय, मैं भी उपस्थित अनुच्छेद के खंड (3) के बारे में कुछ शब्द कहना चाहता हूं। मैंने अनुच्छेद 85 के खंड (3) के सम्बन्ध में एक संशोधन की भी सूचना दी थी। वह संशोधन संख्या 1624 था। मैंने इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में एक अन्य संशोधन की भी अर्थात् संशोधन संख्या 2443 की सूचना दी थी। इन खंडों में से प्रत्येक में सदस्यों के विशेषाधिकारों का उल्लेख है और कामन्स सभा की ओर संकेत किया गया है। किन्तु मैंने पहले के संशोधन और इस संशोधन को भी उपस्थित नहीं किया क्योंकि मैंने यह विचार किया कि इसके कारण मसौदा-समिति को बहुत परिश्रम करना पड़ेगा। इन खंडों के बारे में सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि इनमें यह परिभाषा करने का प्रयास किया गया है कि हमारे वही विशेषाधिकार होंगे जो इंग्लैंड की कामन्स सभा के सदस्यों के हैं। 1935 के भारत सरकार के अधिनियम से नकल करके इन खंडों को लिया गया है। यह खंड उस अधिनियम से ज्यों का त्यों ले लिया गया है और इसमें स्थिति को स्पष्ट करने के लिये कुछ भी प्रयास नहीं किया गया है। जैसा कि श्री कामत ने बताया है, इससे यह पता लगता है कि मसौदा-समिति ने इस सम्बन्ध में कुशलता से कार्य नहीं किया है। कठिनाई यह है कि कामन्स सभा के सदस्यों के विशेषाधिकार कहीं भी सुनिश्चित रूप से उल्लिखित नहीं हैं। इसलिये हम में से कोई

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

भी सदस्य निश्चित रूप से यह नहीं समझ सकता कि उसके विशेषाधिकार क्या हैं। उचित यही है और इसकी आवश्यकता भी है कि इस विषय को अधिक स्थगित न रखा जाये। मेरा अपना विचार यह है कि माननीय सदस्यों को यह सुझाव उपस्थित करना चाहिये कि एक ऐसी अनुसूची समाविष्ट करनी चाहिये जिसमें विशेषाधिकारों का उल्लेख हो। यदि उनके बारे में आज कोई निश्चय किया जाता है तो उसे अनुसूची में समाविष्ट किया जा सकता है और अनुसूची का उल्लेख करते हुए इस खंड में थोड़ा सा संशोधन किया जा सकता है। मैंने एक मसौदा तैयार कर रखा है और यदि मुझ से कहा गया तो मैं उसे यथोचित अवसर पर उपस्थित करूंगा। मेरे विचार से उचित यही है कि जिन विशेषाधिकारों को सुरक्षित रखने के लिये हम चिंतित हैं वे स्पष्टतया विदित होने चाहिये। मेरे विचार से उन्हें व्यवस्थित रूप दिया जाना चाहिये। इस समय हम उन्हें संविधान की एक अनुसूची में समाविष्ट कर सकते हैं और आगे चल कर यदि संसद आवश्यक समझे तो उसे दुहरा सकती है और विस्तृत रूप दे सकती है।

***डा. पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): श्रीमान्, पिछले एक अवसर पर मैंने श्री कामत का समर्थन किया था और उस समय मैंने जो कुछ कहा था उसका एक शब्द भी मैं इस समय नहीं दुहराना चाहता। जहां तक इस खंड का सम्बन्ध है, मैंने एक स्पष्ट सुझाव उपस्थित करना है। यदि कामन्स सभा का उल्लेख न किया जाये तो मुझे प्रसन्नता ही होगी। किन्तु यदि यह संभव न हो तो मेरे एक दूसरे सुझाव पर विचार किया जाये। मुझे इस सम्बन्ध में कुछ सन्देह नहीं है कि जो सुझाव मैं उपस्थित करता हूं उन पर अधिक विचार नहीं किया जाता किन्तु फिर भी मुझे आशा है कि मेरे इस सुझाव की उपेक्षा न की जायेगी। मैं तो इसे अधिक पसंद करता कि विशेषाधिकारों के विषय पर सभा द्वारा स्वीकृत अनुच्छेद 85 के सम्बन्ध में विचार करते समय विचार किया जाता। इससे कामन्स सभा के उल्लेख करने की भी आवश्यकता न पड़ती और अनेक प्रकार के विशेषाधिकारों को भी समाविष्ट न करना पड़ता। यह खंड इस प्रकार है:

> ''अन्य बातों में किसी राज्य के विधानमंडल के किसी सदन के सदस्यों के विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तियां ऐसी होंगी, जैसी विधानमंडल विधि द्वारा परिभाषित करे...''

इसके स्थान पर कि प्रत्येक राज्य का विधानमंडल विशेषाधिकारों की परिभाषा करे मैं इसे पसंद करता हूं कि वे वही हों जो संसद को प्राप्त हों। कुछ समय के लिये कामन्स सभा का उल्लेख रहे किन्तु जब विशेषाधिकारों की परिभाषा की जाये तो संसद ही, न कि प्रत्येक राज्य परिभाषा करे क्योंकि विभिन्न राज्यों की परिभाषा में अन्तर हो सकता है। मुझे आशा है कि मेरा यह सुझाव स्वीकार कर लिया जायेगा क्योंकि इसे स्वीकार करने से फिर अन्य स्थान पर कामन्स सभा का उल्लेख करने की आवश्यकता न रह जायेगी। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 85 की ओर संकेत करके हम अपने संविधान को अपने निर्णय पर ही आधृत कर सकेंगे और अनुच्छेद 85 में इंग्लैंड की कामन्स सभा का उल्लेख रहने पर भी सभी राज्यों के विधानमंडलों के सदस्यों के विशेषाधिकार समान रूप से विस्तृत

होंगे और एक साथ ही समाप्त होंगे और उनमें किसी प्रकार का अन्तर न होगा। मेरी यह धारणा हैं कि यह एक तर्कपूर्ण सुझाव है और मुझे यह आशा है कि मसौदा-समिति तथा माननीय डा. अम्बेडकर इसे पसन्द करेंगे।

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): श्रीमान्, अनुच्छेद 169 के सम्बन्ध में मैंने एक संशोधन की, अर्थात् संशोधन संख्या 2444 की सूचना दी थी, किन्तु मैंने उसे उपस्थित करना उचित नहीं समझा। मुझे खेद है कि हमारी इस सभा की साधारणतया यही प्रवृत्ति रही है कि पेचीदे प्रश्नों को टाल दिया जाये। इस खंड के सम्बन्ध में मेरा यह विचार है कि पार्लियामेंट की कामन्स सभा के सदस्यों के विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों का उल्लेख अनुचित है। यह बात नहीं है कि कामन्स सभा का उल्लेख करने में मैं लज्जा का अनुभव करता हूं। मैं यही कहना चाहता हूं कि इस प्रकार इस विषय के सम्बन्ध में भी हम एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न को टाल रहे हैं यद्यपि यह संविधान-सभा इसे हल करने के लिये सक्षम है। आखिर क्या मैं पूछ सकता हूं कि यदि इस कठिन प्रश्न को इस समय हल नहीं किया गया तो इसे कब हल किया जायेगा? यदि हमारे नेता तथा विधिवेत्ता आज विधानमंडलों के सदस्यों के विशेषाधिकारों की परिभाषा नहीं कर सकते हैं तो मेरी समझ में नहीं आता है कि यह कब सम्भव हो सकेगा। मैं यह जानता हूं कि इस सभा के कुछ सदस्यों को कुछ विशेषाधिकार प्राप्त रहे हैं। यदि हम उन सबकी परिभाषा नहीं भी कर सके तो कम से कम उन विशेषाधिकारों की परिभाषा कर दें जिन्हें हम जानते हैं। मैं यह जानता हूं कि इस सभा के तथा प्रान्तीय विधानमंडलों के कुछ सदस्यों को बिना अनुज्ञप्ति के शस्त्र रखने का अधिकार प्राप्त रहा है। मैं यह भी जानता हूं कि अनुच्छेद 69 में जिस भाषण-स्वातंत्र्य के अधिकार का उल्लेख है वह अधिकार भी उनको प्राप्त रहा है। बन्दी करने के प्रश्न पर भी पंजाब की विधान-सभा में एक समय विचार हुआ था जबकि यह प्रश्न उठाया गया था कि क्या विधान-सभा के सत्र में भाग लेने के लिये आते समय या वापस जाते समय किसी सदस्य को बन्दी किया जा सकता है? जहां तक कामन्स सभा का सम्बन्ध है वहां इस प्रकार की बातों का कहीं उल्लेख नहीं है। वे अलिखित संविधान के अंग हैं। कुछ ऐसे विशेषाधिकार हैं जिनका सम्भवत: उल्लेख नहीं किया जा सकता। चाहे जो भी हो, मेरे विचार से, कामन्स सभा का उल्लेख कुछ हद तक लज्जाजनक है। हम उसका उल्लेख ही क्यों करें? हमारे देश में भी बहुत काल तक संसदें अस्तित्व में रही हैं, इसके लिये कोई कारण नहीं है कि हम अपने विशेषाधिकारों को लिखने का प्रयास न करें। यदि आगे चल कर उन्हें विस्तृत करने अथवा सीमित करने की आवश्यकता हुई तो यह किया जा सकता है किन्तु अपनी उन्मुक्तियों तथा विशेषाधिकारों के सम्बन्ध में कामन्स सभा का इस प्रकार उल्लेख करना अनुचित है।

इसके अतिरिक्त मैंने यहां यह प्रवृत्ति देखी है कि जब कभी कोई पेचीदा प्रश्न उठ खड़ा होता है, जैसे कि राज्य-परिषद् अथवा किसी समान निकाय के निर्माण का प्रश्न, तो हम उसे संसद के निर्णय के लिये स्थगित कर देना चाहते हैं। जब हम संविधान की रचना कर रहे हैं तो हमें आधारभूत तथा महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का इसी सभा में तुरन्त ही निर्णय कर देना चाहिये।

श्रीमान्, मेरे विचार से अच्छा यही होगा कि जिन शब्दों द्वारा कामन्स सभा का उल्लेख किया गया है उन्हें निकाल दिया जाये। यदि हम इस प्रश्न के सम्बन्ध में इसी समय

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

निर्णय नहीं कर सकते हैं तो हमें इसे विधानमंडलों के निर्णय के लिये छोड़ देना चाहिये। किन्तु यदि यह सम्भव न हो तो हमें श्री जसपतराय कपूर का संशोधन स्वीकार कर लेना चाहिये। वे यह चाहते हैं कि जब कभी इन विशेषाधिकारों की परिभाषा की जाये उस समय इसका ध्यान रखा जाये कि प्रान्तीय विधानमंडलों के सदस्यों को वही विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तियां प्राप्त हो जो केन्द्रीय विधानमंडल के सदस्यों को प्राप्त हों।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, कुछ ही समय पूर्व जब हम संसद के विशेषाधिकारों पर विचार-विमर्श कर रहे थे तो इस विषय के सम्बन्ध में वादानुवाद हुआ था और मैंने यह सोचा था कि चूंकि यह सभा संसद के विशेषाधिकारों तथा उन्मुक्तियों के सम्बन्ध में एक अनुच्छेद को स्वीकार कर चुकी है इसलिये जब हम राज्यों के विधानमंडलों के सम्बन्ध में उसी प्रकार के उपबंध को उपस्थित करेंगे तो आगे कुछ वादानुवाद न होगा। किन्तु चूंकि वादानुवाद हुआ है और मेरे मित्र श्री कामत के कथनानुसार समाचारपत्रों में भी उत्तेजना है, इसलिये मेरे लिये यह आवश्यक हो गया है कि मैं यह बताऊं कि मसौदा-समिति ने ऐसा क्यों किया विशेषतया इसलिये भी कि जब पिछली बार वादानुवाद हुआ था तो स्थिति स्पष्ट करने के लिये मैं नहीं बोला था।

मैं कह नहीं सकता कि कितने सदस्य समझते हैं कि विशेषाधिकार का वास्तव में क्या अर्थ है। हमने जिन विशेषाधिकारों की कल्पना की है उनको दो विभिन्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। पहले तो ऐसे विशेषाधिकार हैं जो सदस्यों को व्यक्तिगत रूप से प्राप्त हैं जैसे भाषण-स्वातन्त्र्य का अधिकार और कर्त्तव्यपालन में बन्दी होने से उन्मुक्ति। किन्तु विशेषाधिकारों के अन्तर्गत केवल इतना ही नहीं आता।

***डा. पी.एस. देशमुख:** हम न विशेषाधिकारों की गणना चाहते हैं और न उनके प्रयोग के सम्बन्ध में कोई भाषण ही चाहते हैं। हम केवल यह जानना चाहते हैं कि संविधान में उनका समावेश करना सम्भव है या नहीं। वास्तव में प्रश्न यही है।

***अध्यक्ष:** वे इस प्रश्न की चर्चा कर रहे हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह बता रहा हूं कि कठिनाई क्या है। यदि हमें इन दो बातों अर्थात् भाषण-स्वातन्त्र्य और बन्दी होने से उन्मुक्ति पर ही विचार करना होता तो इनका उल्लेख अनुच्छेद ही में बड़ी आसानी से किया जा सकता था और हमें कामन्स सभा का उल्लेख करने की आवश्यकता न होती। किन्तु संसद के सम्बन्ध में हम जिन विशेषाधिकारों की चर्चा करते हैं वे पूर्वकथित दो विशेषाधिकारों से, जो सदस्यों को केवल व्यक्तिगत रूप से प्राप्त होते हैं, कहीं अधिक विस्तृत हैं उदाहरणार्थ संसद को कुछ ऐसे विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं जो जनसाधारण को प्राप्त नहीं होते और ऐसे भी अधिकार प्राप्त होते हैं जो सदस्यों को व्यक्तिगत रूप से प्राप्त नहीं होते। उदाहरणार्थ कामन्स सभा की शक्तियों और विशेषाधिकार के अधीन संसद को इसकी स्वतंत्रता है कि वह किसी नागरिक को संसद के अवमान के लिये अभिशस्त करे और जब यह विशेषाधिकार

प्रयोग किया जाता है तो न्यायालयों का कोई क्षेत्राधिकार नहीं रह जाता। यह एक महत्त्वपूर्ण विशेषाधिकार है। इसके अतिरिक्त संसद को इसकी भी स्वतंत्रता है कि वह संसद के किसी सदस्य के विरुद्ध, जिसने कोई ऐसा कार्य किया हो जिससे संसद का अवमान होता हो, कार्यवाही करे। ये प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण है—उदाहरणार्थ बन्दी करने का प्रश्न। किसी नागरिक को ऐसा कार्य करने के लिये बन्दी करने के अधिकार की, जिसे संसद अपना अवमान समझती हो, आसानी से परिभाषा नहीं की जा सकती। यह कहना भी आसान नहीं है कि सदस्यों के व्यक्तिगत रूप से किये हुए किन कार्यों से संसद का अवमान होना है।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** हमारी दिलचस्पी केवल सदस्यों के विशेषाधिकारों से है न कि संसद के विशेषाधिकारों से।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मुझे कहने दीजिये। जैसा कि मैं कह चुका हूं, इसकी परिभाषा करना कोई आसान काम नहीं है कि किन कार्यों के बारे में यह कहा जा सकता है कि उनसे संसद का अवमान होता है। इसके लिये बहुत विचार-विमर्श और परीक्षा की आवश्यकता होगी। इसी कारण हमने इन विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों की गणना करना उचित नहीं समझा। किन्तु इस सम्बन्ध में मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है और मुझे विश्वास है कि मसौदा-समिति को भी कुछ सन्देह नहीं है, कि संसद को कुछ विशेषाधिकार प्राप्त होने चाहियें जबकि संसद की मानहानि और निराधार आलोचना हो सकती है जिसके फलस्वरूप इस देश में संसदात्मक संस्थाओं का बहुत अवमान होगा और लोग उसके प्रति श्रद्धा नहीं रखेंगे यद्यपि उनका हितसाधन करने वाली इस संसदात्मक संस्थाओं का उन्हें आदर करना चाहिये।

मैंने एक कठिनाई बताई है जिसके कारण हम विशेषाधिकारों का निश्चित रूप से उल्लेख नहीं कर सके हैं। अब मैं उन कठिनाइयों को भी बताऊंगा जिनका कि हमें सामना करना पड़ा था।

मेरे विचार से यदि यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाता कि संसद के विशेषाधिकारों की अधिनियम में ही गणना होनी चाहिये तो हमें तीन मार्गों का अनुसरण करना पड़ता। एक तो उन्हें संविधान में समाविष्ट करना पड़ता अर्थात् संसद के तथा उसके सदस्यों के विशेषाधिकारों तथा उन्मुक्तियों का विस्तृत विवरण देना होता। मैंने मे की पुस्तक ''पार्लियामेंटरी प्रैक्टिस'' का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया क्योंकि संसद के विशेषाधिकारों तथा उन्मुक्तियों के बारे में जानकारी प्राप्त करने का वही एक स्रोत है। मैंने मे की ''पार्लियामेंटरी प्रैक्टिस'' की अनुक्रमणिका को भी पढ़ा और उसमें देखा कि अनुक्रमणिका के आठ या नौ स्तम्भों में संसद के विशेषाधिकारों तथा उन्मुक्तियों का ही विवरण है। इसलिये यदि आप मे की तद्विषयक व्याख्या के आधार पर संसद के विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों की एक सम्पूर्ण संहिता को अधिनियम में प्रविष्ट करना चाहते हैं तो मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी सन्देह नहीं है कि हमें विशेषाधिकार तथा उन्मुक्ति-सम्बन्धी बीस अथवा पच्चीस पृष्ठ जोड़ने पड़ेंगे। मैं कह नहीं सकता कि इस सभा के माननीय सदस्य संसद के विशेषाधिकारों तथा उन्मुक्तियों के सम्बन्ध में बीस अथवा पच्चीस पृष्ठ के एक बृहत् विवरण को स्थान देना चाहेंगे अथवा नहीं। इस कारण भी हमने इस मार्ग का अनुसरण नहीं किया।

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

दूसरा मार्ग यह है कि ये शब्द रखे जा सकते थे, जैसे कि संविधान के कई स्थलों पर रखे गये हैं, कि इस विशेष विषय के सम्बन्ध में संसद उपबंध कर सकती है और जब तक वह उपबंध न करेगी तब तक वर्तमान स्थिति बनी रहेगी। हम इस मार्ग का अनुसरण कर सकते थे। हम यह कह सकते हैं कि संसद सदस्यों के तिथि सभा के विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों की परिभाषा कर सकती है और जब तक यह परिभाषा न की जाये वही विशेषाधिकार जारी रहेंगे जो संविधान के प्रवर्त्तन में आने की तिथि को प्राप्त थे। किन्तु जैसा कि माननीय सदस्यों को विदित है, दुर्भाग्य से 1935 के अधिनियम द्वारा संसद को तथा उसके सदस्यों को कोई विशेषाधिकार अथवा उन्मुक्तियां प्रदान नहीं की गई। उसमें केवल एक उपबंध रखा गया और वह यह था कि बोलने की स्वतंत्रता होगी और संसद में वादानुवाद के समय कही हुई किसी बात के लिये कोई सदस्य अभियोजित न किया जायेगा। इसलिये हम इस मार्ग का अनुसरण नहीं कर सकते थे क्योंकि वर्तमान संसद अथवा विधानसभा को कोई विशेषाधिकार अथवा उन्मुक्तियां प्राप्त नहीं हैं। इसलिये हम इस मार्ग का अनुसरण नहीं कर सकते थे।

हमारे लिये केवल एक ही मार्ग रह गया और उसी का हमने अनुसरण किया अर्थात् हमने यह कहा कि संसद को वही विशेषाधिकार प्राप्त होंगे जो कामन्स सभा को प्राप्त हैं। मेरे विचार से कामन्स सभा के उल्लेख के सम्बन्ध में भावनावश ही आपत्ति की गई है क्योंकि मसौदा-समिति के इस कार्य के विरुद्ध जो तर्क उपस्थित किया गया है उसमें मुझे कोई सार नहीं दिखाई देता। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि इस अनुच्छेद में उसी मार्ग का अनुसरण किया गया है जिसका हमने अनिवार्य रूप से अवलम्बन करना था क्योंकि हमारे सामने अन्य कोई विकल्प नहीं था। इस दशा में मेरा यह सुझाव है कि इस अनुच्छेद को उसी रूप में स्वीकार कर लिया जाये जिस रूप में यह मसौदे में रखा गया है।

***डा. पी.एस. देशमुखः** माननीय सदस्य महोदय ने मेरे दूसरे सुझाव के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** जैसाकि मैं बता चुका हूं, यदि आप सभी विशेषाधिकारों तथा उन्मुक्तियों का निश्चयात्मक रूप से विस्तृत विवरण देना चाहते हैं तो इसके लिये कम से कम पच्चीस पृष्ठ आवश्यक होंगे...।

***अध्यक्षः** डा. देशमुख का सुझाव यह था कि इस अनुच्छेद में, जो राज्यों के विधानमंडलों के सम्बन्ध में है, हम केवल ये शब्द रख सकते हैं कि किसी राज्य के विधानमंडल के सदस्यों को वही विशेषाधिकार प्राप्त होंगे जो संसद के सदस्यों को प्राप्त होंगे।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** यह सुझाव केवल मसौदे की शुद्धि के सम्बन्ध में है। उदाहरणार्थ यह कहा जा सकता है कि राज्यों के विधानमंडलों के सम्बन्ध में हम जिन अनुच्छेदों को स्वीकार कर रहे हैं उनमें से अधिकांश उन्हीं अनुच्छेदों के समान हैं जो हमने केन्द्रीय संसद के सम्बन्ध में स्वीकार किये हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि अन्य कई विषयों के सम्बन्ध में राज्यों के विधानमंडलों पर भी वही उपबंध प्रयुक्त होंगे।

किन्तु चूंकि हमने अन्यत्र इस मार्ग का अनुसरण नहीं किया है, इसलिये केवल इस विषय के सम्बन्ध में उसे स्वीकार करना अनुपयुक्त होगा।

***अध्यक्ष:** पहले मैं श्री जसपतराय कपूर के संशोधन पर सभा का मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 169 के खंड (4) में 'a House of the Legislature of a State' (राज्य के विधानमंडल के किसी सदन) शब्दों के बाद 'or any committee thereof' (अथवा उसकी किसी समिति) शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 169, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 169, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 170

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 170 के सम्बन्ध में संशोधन संख्या 2450 और 2451 के अतिरिक्त और कोई सारभूत संशोधन उपस्थित नहीं किये गये हैं।

(संशोधन संख्या 2448 और 2449 उपस्थित नहीं किये गये।)

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 170 में 'so made' (बनाया जाता) शब्दों के बाद 'salaries and' (वेतन और) शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

श्रीमान्, इस अनुच्छेद में असावधानी से जो एक बात रह गई है उसी को पूरा करने के लिये यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया है। अनुच्छेद 170 विधानसभा तथा विधान-परिषद् के सदस्यों के वेतनों तथा भत्तों के बारे में है सभा को यह विदित होगा कि इसके दो भाग हैं। पहले भाग में संसद द्वारा वेतन और भत्ते निश्चित करने के सम्बन्ध में उपबंध किया गया है और आगे के भाग में यह कहा गया है कि जब तक यह उपबंध न किया जाये वर्तमान व्यवस्था जारी रहेगी। किन्तु वास्तव में ये शब्द हैं: 'इस दर पर भत्ते जारी रहेंगे।' सभा को यह विदित होगा कि प्रान्तीय विधानमंडलों के सदस्यों को इस समय वेतन मिल रहे हैं यदि 'वेतन' शब्द प्रविष्ट न किया गया तो जब तक इस सम्बन्ध में उपबंध

[श्री एल. कृष्णास्वामी भारती]

न रखा जायेगा तब तक प्रान्तीय विधानमंडलों के सदस्यों को कोई वेतन न मिलेगा। इस अनुच्छेद की शब्दावली अनुच्छेद 86 की शब्दावली के समान ही है जो संसद के सदस्यों के बारे में है। संविधान सभा के सदस्य वेतन नहीं पाते हैं। इसलिये भत्तों के लिये उपबंध किया गया है किन्तु प्रान्तीय विधानमंडलों में सदस्य वेतन पाते हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि 'वेतन' शब्द प्रविष्ट किया जाये। मुझे आशा है कि यह सभा इस संशोधन को स्वीकार कर लेगी।

***अध्यक्ष:** दूसरा संशोधन अर्थात् संशोधन संख्या 2451 मि. जैड.एच. लारी के नाम से है। केन्द्रीय संसद के सम्बन्ध में इसी आशय के एक संशोधन पर विचार-विमर्श हुआ था और वह अस्वीकार कर दिया गया था। मैं यह देखता हूं कि मि. लारी उपस्थित भी नहीं हैं। इसलिये यह संशोधन उपस्थित नहीं किया जा रहा है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं श्री भारती के संशोधन को स्वीकार करता हूं।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 170 में 'so made' (बनाया जाता) शब्दों के बाद 'salaries and (वेतन और) शब्द प्रविष्ट किये जायें।

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 170, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 170, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

***अध्यक्ष:** एक नवीन अनुच्छेद अर्थात् अनुच्छेद 170 (क) की सूचना श्री भारती ने दी है।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** श्रीमान्, मैं उसे उपस्थित नहीं कर रहा हूं।

***अध्यक्ष:** एक अन्य संशोधन भी है जो प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम से है।

नवीन अनुच्छेद 170-क

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): श्रीमान् मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 170 के बाद निम्नलिखित नवीन अनुच्छेद 170-क प्रविष्ट किया जाये:

''170-A. It shall be open to the Legislature of any State to move the Supreme Court to restrain any other State from ill-treating or discriminating against or denying the Fundamental Rights of citizens to

the individual originating from the former State but who are setted or carrying on any trade, profession, occupation or business in the latter on the ground only of their not being original inhabitants of that State.' ''

(170-क, किसी भी राज्य के विधानमंडल को इसकी स्वतंत्रता होगी कि वह किसी ऐसे अन्य राज्य को रोकने के लिये उच्चतम-न्यायालय को परिचालित करे, जो पूर्वोक्त राज्य में जन्मे हुए उन लोगों के प्रति, जो वहां बस गये हों अथवा व्यापार, वृत्ति आजीविका अथवा कारोबार में संलग्न हों इस कारण दुर्व्यवहार कर रहा हो अथवा विभेद बरत रहा हो अथवा उन्हें नागरिकों के मूलाधिकारों से वंचित कर रहा हो कि वे उस राज्य के मूल-निवासी नहीं हैं।)'

श्रीमान्, यह एक बहुत कठिन विषय है और इसके कारण बहुत से जनसेवी लोगों में बहुत उत्तेजना है और जब तक हम इसके लिये किसी संवैधानिक उपचार की व्यवस्था नहीं करते तब तक यह विकृत रूप में उपस्थित होता रहेगा।

श्रीमान्, साधारणतया इस प्रश्न का स्वरूप साम्प्रदायिक प्रश्न के समान ही है और इसके फलस्वरूप भी वही परिणाम होने की सम्भावना है जो साम्प्रदायिक प्रश्न के फलस्वरूप हुए हैं और जिनके कारण देश का विभाजन हुआ है। अन्तर्प्रान्तीय विद्वेष, जो इस समय कई प्रकार प्रकट हो रहा है, देश की अक्षुण्णता के लिये घातक सिद्ध होगा और उसके कारण देश के विभिन्न भागों के बीच सद्भावना भी नहीं बनी रहेगी। इस समय इस ओर तुरन्त ही ध्यान देने की आवश्यकता है। यदि हम इस प्रकार के प्रश्नों का संवैधानिक हल चाहते हैं और इन्हें शान्ति तथा सद्भावनापूर्वक हल करना चाहते हैं तो जिस प्रकार के उपबंध का मैंने सुझाव रखा है उसका बहुत महत्त्व है। हमें यह विदित है कि इस प्रकार की भावना अब इस रूप में प्रकट होने लगी है कि विधि-निर्माण में नहीं तो कम से कम कर लगाने में और सेवाओं के लिये नियुक्तियां करने में विभेद किया जाता है अथवा देश के किसी भाग के लोगों को व्यापार आजीविका अथवा कारोबार के सम्बन्ध में अथवा किसी प्रदेश में कारोबार, व्यापार अथवा वृत्ति करने के सम्बन्ध में सुविधायें प्रदान की जाती हैं। इस प्रश्न का एक हल यह सुझाया गया है कि देश के विभिन्न भागों का किसी आन्तरिक समानता के आधार पर, जैसे कि भाषा के आधार पर पुनर्निर्माण किया जाये। किन्तु इसके फलस्वरूप नई कठिनाइयां उपस्थित हो जाती हैं। मेरे विचार से यह भावना ही इस प्रकार की है कि जब तक इसके निराकरण के लिये संविधान में ही सामंजस्य तथा सद्भावनापूर्ण उपबंध न रखा जाये तब तक संकटों से मुक्ति नहीं मिल सकती है।

यह हो सकता है कि आपने केन्द्रीय सरकार अथवा विधानमंडल को इस प्रकार की शक्तियां प्रदान की हों। इस आधार पर आपकी यह धारणा हो सकती है कि जिन लोगों को शिकायत हो उनके प्रति न्याय किया जाये। मेरा अपना विचार यह है कि इस व्यवस्था के कारण केन्द्रीय सरकार और केन्द्रीय विधानमंडल पर ही यह सन्देह किया जा सकता

[प्रो. के.टी. शाह]

है कि वे न्याय की दृष्टि से नहीं बल्कि राजनीतिक दृष्टि से निर्णय करते हैं। इसलिये मैंने यह सुझाव रखा है कि राज्यों के विधानमंडलों को सामूहिक रूप में यह शक्ति प्रदान की जाये कि वे उच्चतम न्यायालय के सम्मुख किसी वाद को उपस्थित कर सकते हैं क्योंकि सम्भावना इसी की है कि उच्चतम न्यायालय केवल न्याय की दृष्टि से निर्णय करेगा और इस संशोधन में जिन शिकायतों की ओर संकेत किया गया है उसके सम्बन्ध में केवल न्याय के आधार पर एक ऐसे न्यायिक प्राधिकारी द्वारा निर्णय किया जायेगा जिस पर न कोई अभियोग लगाया जायेगा और न कोई आपत्ति की जायेगी।

श्रीमान्, इसमें कोई सन्देह नहीं कि सामूहिक रूप से इस प्रकार की जो शिकायतें होंगी उनके सम्बन्ध में किसी न्यायालय में वाद उपस्थित करना कठिन होगा क्योंकि प्रत्यक्षत: किसी विशेष व्यक्ति को कोई ऐसी हानि न होगी जिसके सम्बन्ध में प्रमाण दिया जा सके और कार्यवाही की जा सके तथा न्यायालय में वाद उपस्थित किया जा सके। मैं इस कठिनाई को पूर्णतया अनुभव करता हूं और इसलिये मैं इस उपचार का सुझाव उपस्थित कर रहा हूं कि प्रस्तावित उपबंध के समान किसी उपबंध को स्थान दिया जाये ताकि वर्गीयता का निरोध हो सके और किसी प्रकार की आपत्ति न की जा सके। इस प्रकार आपत्ति के लिये बहुत कम स्थान रह जायेगा।

यह कल्पनातीत नहीं है कि किसी दिन सारे देश का एकीकरण हो जायेगा और लोगों में एकता की भावना जागृत हो जायेगी। किन्तु इसमें अवश्य कुछ समय लगेगा। जब तक सारा देश राष्ट्रीयता की भावना से अनुप्राणित नहीं होता तब तक इस प्रकार का उपबंध बहुत सी कठिनाइयों को दूर करने में सहायक होगा। कम से कम मुझे तो इन कठिनाइयों की कल्पना से भय का ही अनुभव होता है। इसलिये मुझे आशा है कि मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जायेगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रोफेसर शाह का ध्यान केवल इस ओर दिलाना चाहता हूं कि अनुच्छेद 9 और 10 के अधीन हम यह उपबंध रख चुके हैं कि मूलवंश, जाति, जन्मस्थान आदि के आधार पर किसी नागरिक के प्रति विभेद न किया जायेगा और राज्याधीन किसी पद अथवा नौकरी के संबंध में कोई नागरिक धर्म, निवास, जन्मस्थान आदि के आधार पर न तो अपात्र समझा जायेगा और न उसके प्रति विभेद किया जायेगा। चूंकि प्रान्तीयता के आधार पर विभेद करने के विरुद्ध ये उपबंध है इसलिये एक पृथक् अनुच्छेद में इस प्रकार का उपबंध करने की कोई आवश्यकता नहीं हैं। मेरे मित्र की यह इच्छा है कि राज्य के विधानमंडल को यह शक्ति प्राप्त होनी चाहिये कि वह उच्चतम न्यायालय के सम्मुख वाद उपस्थित कर सके। मेरे विचार से प्रान्तीय भावनाओं और विद्वेष की बढ़ा चढ़ा कर चर्चा करना उचित नहीं है। लोग व्यवहार न्यायालयों में अपने मामलों को तय करा सकते हैं। मेरे विचार से इस उपबंध को स्थान देकर हम प्रान्तीय विद्वेष को बढ़ायेंगे न कि उसे कम करेंगे।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान्, मेरे विचार से इस अवसर पर इस प्रकार के अनुच्छेद को स्थान देने के लिये कोई युक्तियुक्त कारण नहीं है। प्रोफेसर शाह ने भाषा, जाति आदि

के कारण प्रान्तों और राज्यों के बढ़ते हुए विद्वेष की ओर सभा का ध्यान आकृष्ट किया हैं किन्तु जैसा कि प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना कह चुके हैं, मूलाधिकारों के अधीन अनुच्छेद 13 और 25 में इन अधिकारों की प्रत्याभूति दी गई है और इनको प्रयोग में लाने के लिये उपबंध रखे गये हैं। यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि अनुच्छेद 25 में किसी व्यक्ति को, न कि किसी निगम को, यह अधिकार दिया गया है कि वह भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों को प्रयोग में लाने के लिये यथोचित प्रक्रिया द्वारा उच्चतम न्यायालय में वाद उपस्थित कर सकता है। मैं कह नहीं सकता कि आगे चल कर न्यायवेत्ता, विधिवेत्ता तथा संविधान के विशेषज्ञ अनुच्छेद 25 का किस प्रकार निर्वचन करेंगे। मेरे विचार से उससे केवल व्यक्ति को ही अधिकार प्राप्त होते हैं और विधानमंडल अथवा किसी अन्य संगठन को प्राप्त नहीं होते। किन्तु प्रोफेसर शाह ने जिस उपचार का सुझाव रखा है यह रोग से भी अधिक कष्टकर सिद्ध होगा। वे अन्तर्प्रान्तीय विद्वेष को जहां तक संभव हो मिटाना चाहते हैं ताकि किसी प्रकार का विभेद न हो सके। किन्तु इस रोग का यह उपचार नहीं है कि किसी अन्य राज्य पर रोकथाम करने के लिये किसी राज्य को उच्चतम न्यायालय में वाद उपस्थित करने का अधिकार प्राप्त हो। किसी राज्य के इस प्रकार के कार्य से दूसरे राज्य को यह भ्रम हो सकता है कि वह उसके मामलों में हस्तक्षेप कर रहा है। इसका यही भयंकर परिणाम होगा। इसलिये यदि हमें उपचार ही प्राप्त करना है तो हमें भाग 3 के अनुच्छेद 25 के उपबंधों का ही अनुसरण करना चाहिये। यदि किसी राज्य के किसी ऐसे नागरिक को, जिसका उस राज्य में उद्‌भव न हुआ हो किन्तु वहां बस गया हो, वहां की सरकार से कोई शिकायत हो तो भाग 3 के अधीन उसे यह अधिकार प्राप्त है कि वह किसी उच्चतम न्यायालय में वाद उपस्थित करे। यह पर्याप्त व्यवस्था है और इस प्रकार के अनुच्छेद को प्रविष्ट करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

***डा. पी.एस. देशमुखः** श्रीमान्, मैं अपने मित्र प्रोफेसर शिब्बनलाल और श्री कामत के समान केवल यह कह कर संतोष नहीं कर लेना चाहता कि एक नये अनुच्छेद को प्रविष्ट करने की आवश्यकता नहीं है और हमें मूलाधिकारों के उपबंधों से ही संतोष कर लेना चाहिये।

मैं इस सुझाव का बहुत विरोध करता हूं कि इस अनुच्छेद में जिस प्रकार के विषय का उल्लेख है उसके सम्बन्ध में किसी राज्य को किसी अन्य राज्य के आचरण पर आपत्ति करने की क्षमता प्राप्त होनी चाहिये। मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि प्रोफेसर शाह जैसे व्यक्ति ऐसे लोगों के हितों की रक्षा का प्रयास कर रहे हैं जिनके प्रति मैं उनसे सहानुभूति की आशा नहीं करता था। अपने भाषण में उन्होंने साम्प्रदायिक बातों का भी निर्देश किया है। यह एक प्रथा चल पड़ी है कि आलोचक स्वयं चाहे साम्प्रदायिकता में डूबा हुआ हो और चाहे केवल अपने ही सम्प्रदाय के लोगों की अथवा अपने ही रिश्तेदारों की सहायता करता हो किन्तु वह अन्य लोगों को साम्प्रदायिक कहता है। यह आजकल की प्रथा है। जो लोग 90 प्रतिशत लोगों के लिये खड़े होते हैं वे साम्प्रदायिक कहे जाते हैं और जिन्होंने अपने रिश्तेदारों अथवा अपनी जाति के लोगों के अतिरिक्त अन्य किसी का हितसाधन न किया हो वे लोगों को समझते हैं कि वे बड़े सदाचारी और विश्वप्रेमी हैं। मैं इस ओर संकेत नहीं करना चाहता था किन्तु मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि यद्यपि इस अनुच्छेद में साम्प्रदायिकता का कोई उल्लेख नहीं है किन्तु फिर भी मेरे विद्वान्

[डा. पी.एस. देशमुख]

मित्र प्रोफेसर शाह ने उसकी चर्चा की है। वास्तव में वे कारोबारियों, व्यापारियों आदि के हितों की रक्षा करना चाहते हैं। मैं इसे पूरे जोर से कहना चाहता हूं कि भारत में कारोबार तथा व्यापार-वाणिज्य में लगे हुये लोग ईमानदार सिद्ध नहीं हुये हैं। इस वृत्ति का आधार धोखेबाजी ही रही है। यदि आप देखें कि समय-समय पर हमारे खाद्य-पदार्थ किस प्रकार बेचे जाते हैं तो आपको यह देखकर आश्चर्य होगा कि किस प्रकार अवमिश्रण किया जाता है। मेरे विचार से किसी को यह कहने का साहस न होगा कि उसे शुद्ध खाद्य-पदार्थ मिलते हैं और उनमें किसी प्रकार का अवमिश्रण नहीं होता। ईमानदारी से कारोबार करके जो लाभ होता है उससे व्यापारी संतुष्ट नहीं रहते। इस स्थिति में यदि कोई राज्य बृहत् रूप से इस अवमिश्रण के विरुद्ध किसी विधि का निर्माण करना चाहे तो मेरे मित्र प्रोफेसर शाह वे मतानुसार ऐसे राज्य को, जिसमें केवल व्यापारी और कारोबारी ही हों, उच्चतम न्यायालय में वाद उपस्थित करने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये ताकि ऐसी विधि का निर्माण करने वाले किसी राज्य अथवा सभी राज्यों के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय कार्यवाही कर सके।

एक अन्य बात पर भी विचार करने की आवश्यकता है और वह है भारत में सूदखोरी का प्रश्न। आगे चल कर संयुक्त महाराष्ट्र जैसे राज्य को, अस्तित्व में आने पर, उन सूदखोरों के विरुद्ध कार्यवाही करनी होगी जो केवल सूदखोरी से और धोखा देकर ही हजारों लाखों एकड़ जमीन पर अधिकार किये हुए हैं। मुझे विश्वास है कि मेरे मित्र प्रोफेसर शाह इन्हीं लोगों के भय तथा त्रास को व्यक्त कर रहे थे। यदि वे भयभीत हैं तो मैं उन्हें दोष नहीं देता। यदि वे वास्तव में भयभीत हैं तो उनके भय के निराकरण का उपाय यही है कि वे अपना सुधार करें और समाज के अन्य लोगों के प्रति न्यायपूर्ण व्यवहार करें और केवल धोखेबाजी से ही सम्पन्न होने तथा अपना अस्तित्व बनाये रखने का प्रयास न करें। यह अपचार इससे कहीं श्रेष्ठ है कि किसी राज्य को उनकी रक्षा के लिये उच्चतम न्यायालय में वाद उपस्थित करने की शक्ति दी जाये ताकि उनके जघन्य कार्यों की ओर किसी का ध्यान ही न जाये और उनका विरोध ही न हो सके। इस दृष्टि से मैं उस मूलाधिकार को भी पसंद नहीं करता हूं जिसके अधीन कोई व्यक्ति कहीं भी भूमि अथवा सम्पत्ति का अर्जन कर सकता है क्योंकि विपुल सम्पत्ति के अर्जन का ही अर्थ है कि वह न्यायोचित रीति से प्राप्त नहीं की गई है। यदि कोई राज्य इन अनुचित उपायों को रोकने के लिये आगे बढ़ता है तो उसे इसकी पूरी स्वतंत्रता प्राप्त होनी चाहिये और समाज के इन शत्रुओं को दंडित करने में उसके मार्ग में कोई बाधा न होनी चाहिये।

श्रीमान्, इन कारणों को दृष्टि में रखते हुए मेरे विचार से इस अनुच्छेद के फलस्वरूप बेईमानी तथा समाज-विरोधी सभी ऐसे कार्य कानूनी हो जायेंगे, जिन्हें करने का हमारे देश के कुछ लोगों को अभ्यास हो गया है। श्रीमान्, मुझे आशा है कि इस प्रकार की कोई बात न होने दी जायेगी। इसके अतिरिक्त श्रीमान्, 'अल्पसंख्यक' शब्द का गलत निर्वाचन किया जाता है। हम मुसलमानों को ही अल्पसंख्यक और हिन्दुओं को ही बहुसंख्यक समझते थे। बाद को सिख सामने आये और अनुसूचित जातियां भी अल्पसंख्यक समझे जाने लगे। अब हिन्दुओं के ही छोटे-छोटे सम्प्रदायों और जातियों के लिये भी इस शब्द को प्रयोग

करने का प्रयास किया जाता है। हिन्दू सम्प्रदाय का इन छोटी-छोटी जातियों द्वारा शोषण होता रहा है और यदि इन जातियों का घोर विरोध किया जा रहा है तो उसका आधार साम्प्रदायिक भावनायें नहीं हैं। वह इन जातियों के जनशोषण के कारण किया जा रहा है। कोई राज्य इस शोषण को समाप्त करने का प्रयास कर सकता है और उसके मार्ग में इस उपबंध के कारण कोई रुकावट न आने देनी चाहिये।

***प्रो. के.टी. शाह:** जो तर्क उपस्थित किये गये हैं उनको दृष्टि में रखते हुए मैं सभा से प्रार्थना करता हूं कि मुझे इस संशोधन को वापस लेने की आज्ञा दी जाये।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस ले लिया गया।

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 171 को उठाते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** चूंकि अनुच्छेद 171 से आरम्भ होने वाले अध्याय के बाद के उपबंधों का आशय उन्हीं उपबधों के समान है, जिनके बारे में सभा ने अभी विनिश्चय नहीं किया है और जो वित्तीय विषयों और उच्चतम न्यायालय के सम्बन्ध में हैं, हम पहले उन उपबंधों पर विचार कर सकते हैं और अनुच्छेद 109 को उठा सकते हैं। वित्तीय उपबंधों और उच्चतम न्यायालय सम्बन्धी उपबंधों को स्वीकार कर लेने पर अनुच्छेद 171 से आरम्भ होने वाले अध्याय के बाद के उपबंधों पर विचार करना सरल हो जायेगा क्योंकि उनके आशय में तथा पहले के अनुच्छेदों के आशय में प्रसंगानुसार ही थोड़ा सा अन्तर है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** हमें इसकी सूचना नहीं दी गई थी कि अनुच्छेद 109 आज उठाया जायेगा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** इससे क्या अन्तर पड़ता है।

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 171 और 172 केवल प्रक्रिया के सम्बन्ध में है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अनुच्छेद 172 संयुक्त अधिवेशनों के सम्बन्ध में है और जब तक अवर सदन के ढांचे के सम्बन्ध में विनिश्चय नहीं किया जाता तब तक हम संयुक्त अधिवेशनों के प्रश्न के सम्बन्ध में भी कोई विनिश्चय नहीं कर सकते। अनुच्छेद 172 के बाद के अनुच्छेदों का आशय उन्हीं अनुच्छेदों के समान है जो हमने स्थगित कर रखे हैं। किन्तु अध्यक्ष महोदय जैसा उचित समझें करें।

***अध्यक्ष:** सूचना दी गई है। मि. नजीरुद्दीन अहमद, कार्यावधि में आप देखेंगे कि विषय (2) भाग 5 के अध्याय 2 और 4 तथा भाग 6 के अवशिष्ट अनुच्छेदों के सम्बन्ध में है। इसलिये इसकी सूचना दी गई है कि अनुच्छेद 109 आज उठाया जायेगा। क्या हम अनुच्छेद 109 को उठायें?

***माननीय सदस्यगण:** जी हां।

***अध्यक्ष:** हम अनुच्छेद 109 उठाते हैं।

अनुच्छेद 109

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 109 में 'If in so far as' (यदि जहां तक) शब्दों के स्थान में 'if and in so far as' (यदि और जहां तक) शब्द रखे जायें।''

(संशोधन संख्या 1896 और 1897 उपस्थित नहीं किये गये।)

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, मैं संशोधन संख्या 1898 उपस्थित करता हूं, जो मेरे नाम से है और उसमें संशोधन करते हुए मैं तीसरे सप्ताह की सूची 3 के संशोधन संख्या 147 को उपस्थित करता हूं, जो इस प्रकार है:

> ''संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 1898 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 109 के परन्तुक के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:
>
> 'Provided that the said jurisdiction shall not extend to a dispute to which any State is a party, if the dispute arises out of any provision of a treaty, agreement, engagement, sanad or other similar instrument which provides that the said jurisdiction shall not extend to such dispute.' ''
>
> (परन्तु उक्त क्षेत्राधिकार का विस्तार उस विवाद तक न होगा जिसमें कोई राज्य एक पक्ष हो, यदि वह विवाद किसी संधि, करार, वचनबंध, सनद अथवा इसी प्रकार की अन्य किसी ऐसी लिखत से उत्पन्न होता हो, जो यह उपबंध करती हो कि उक्त क्षेत्राधिकार का विस्तार ऐसे विवाद तक न होगा।)

श्रीमान्, संशोधन संख्या 1898 और मेरे संशोधन का आशय बहुत कुछ समान ही है। मेरे संशोधन में केवल यह कहा गया है कि परन्तुक (1) को निकाल देने से पूरे परन्तुक का रूप क्या हो जायेगा। परन्तुक (1) को इस कारण निकालने का प्रस्ताव किया गया है कि उसमें ऐसे विवादों का उल्लेख है जिनमें प्रथम अनुसूची के भाग 3 में इस समय उल्लिखित कोई राज्य एक पक्ष है जिससे कई करार और विवाद सामने आते हैं किन्तु उन्हें इस परन्तुक द्वारा इस अनुच्छेद की परिधि के अन्दर नहीं आने दिया गया है। सभा को स्मरण होगा कि अपने विचार-विमर्श में हम जानबूझ कर प्रथम अनुसूची के भाग 3 के राज्यों की चर्चा नहीं कर रहे हैं जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं और श्री के.एम. मुंशी और डा. अम्बेडकर भी कह चुके हैं, यदि इन राज्यों के लिये पृथक् रूप से उपबंध करने की आवश्यकता हुई और यदि संविधान के मसौदे के सभी अनुच्छेदों पर विचार-विमर्श कर लेने पर भी यह आवश्यकता समझी गई तो इनके लिये एक पृथक् अध्याय में उपबंध किया जायेगा और इसलिये यह परन्तुक संख्या (1) बिल्कुल अनावश्यक है। इस प्रकार के उपबंध को स्थान न देने के लिये ही मैंने इस संशोधन को उपस्थित किया है क्योंकि

इससे ये राज्य उन राज्यों के समान न रह जायेंगे, जो इस समय भारत के प्रान्त हैं। श्रीमान्, इससे कोई पेचीदगी पैदा नहीं होती क्योंकि इसका उद्देश्य केवल परन्तुक (1) को निकाल देना है। मुझे आशा है कि सभा इसे स्वीकार कर लेगी।

(संशोधन संख्या 1899, 1900 और 1901 उपस्थित नहीं किये गये।)

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं अनुच्छेद 109 का विरोध करने के लिये उठा हूं। मुझे उन्हीं तर्कों को फिर दुहराने में कभी भी संकोच नहीं होता क्योंकि मेरी यह धारणा है कि सम्भवत: उन्हें दुहराने से कुछ प्रभाव पड़े और एकात्मक शासन-प्रणाली के पक्ष में मत परिवर्तन हो जाये। इस अनुच्छेद के अधीन उच्चतम न्यायालय को जो शक्ति प्रदान की गई है उसे प्रदान करने के पक्ष में मैं नहीं हूं। भारत सरकार को दो राज्यों के किसी विवाद का निर्णय करने की शक्ति हमेशा से प्राप्त रही है। मैं इसे अच्छी प्रकार समझता कि संघीय-शासन में उच्चतम न्यायालय का स्थान क्या है किन्तु मैं संघीय-शासन तथा उच्चतम न्यायालय दोनों के विरुद्ध हूं। मेरी यह धारणा है कि यदि दो राज्यों के बीच संघर्ष हो तो भारत सरकार को उस सम्बन्ध में निर्णय करना चाहिये। यदि भारत सरकार और किसी राज्य के बीच संघर्ष हो तो भारत सरकार का निर्णय अन्तिम समझा जाना चाहिये। प्रान्तीय सरकारें अधीन सरकारें हैं। मुझे और अधिक कुछ नहीं कहना है।

***श्री ए. थानू पिल्ले** (ट्रावणकोर राज्य): अध्यक्ष महोदय, श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने जो संशोधन उपस्थित किया है उसका समर्थन करते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। हम यह देखते हैं कि संविधान के मसौदे में प्रथम अनुसूची के भाग 3 के राज्यों और भाग 1 के राज्यों के बीच अन्तर करने का प्रयास किया गया है क्योंकि भाग 3 के राज्यों और केन्द्र के तथा भाग 1 के राज्यों और केन्द्र के राजनैतिक सम्बन्धों में अन्तर हैं। श्रीमान्, जबसे यह मसौदा तैयार हुआ है स्थिति में बहुत परिवर्तन हो गया है। हम इस मसौदे के भाग 3 में देखते हैं कि उन्नीस राज्यों की गणना की गई है। अन्य राज्यों का उल्लेख इसलिये नहीं किया गया कि आशा यह थी कि वे बड़े एककों में समाविष्ट हो जायेंगे। अब सभी छोटे-छोटे राज्य लुप्त हो चुके हैं। उन उन्नीस एककों में से भी, जिनके बारे में आशा की जाती थी कि वे रहेंगे हम देखते हैं कि अब केवल चार या पांच शेष रह गये हैं और वे भी अर्थात् वे राज्य जो इस समय प्रान्त कहे जाते हैं, शीघ्रता से अन्य राज्यों के स्तर पर आ रहे हैं यदि भाग 3 के राज्यों के लोगों को नये संविधान के प्रवर्त्तन पर कोई लाभ प्राप्त होगा तो मेरे विचार से वह यह है कि उन्हें उच्चतम न्ययालय के सम्मुख वाद उपस्थित करने का अधिकार प्राप्त हो जायेगा। इन राज्यों के लोगों को अभी तक प्रिवी कौंसिल में अपील करने का अधिकार प्राप्त नहीं था। हमारे न्यायालय सर्वशक्ति-सम्पन्न हैं। ट्रावणकोर के उच्च न्यायालय को उस राज्य के सम्बन्ध में वही विस्तृत शक्तियां प्राप्त हैं जो भारत के प्रान्तों के सम्बन्ध में प्रिवी कौंसिल को प्राप्त हैं। अब स्थिति में परिवर्तन हो रहा है और परिवर्तन होना ही चाहिये। श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने कहा है कि अब इस आधार पर उपबंध रखे जायेंगे कि उच्चतम न्यायालय को भाग 1 और भाग 3 के राज्यों के सम्बन्ध में समान क्षेत्राधिकार प्राप्त होगा

[श्री ए. थानू पिल्ले]

किन्तु यदि भाग 3 के राज्यों के समय पर करार नहीं किया गया तो वे इन उपबंधों के प्रवर्त्तन के प्रभाव से वंचित हो जायेंगे। श्रीमान्, मुझे पूरी आशा है कि यह आकस्मिक स्थिति उत्पन्न न होगी। मुझे आशा है कि इस विषय में सम्बन्धित सभी लोग, जिनमें भारत-सरकार के सूत्रधार और वे लोग भी सम्मिलित हैं जिन्हें भाग 3 के राज्यों की ओर से बोलने का अधिकार है, इसे स्वीकार करेंगे कि इन राज्यों के लोगों को उच्चतम न्यायालय के सम्मुख वाद उपस्थित करने का उसी प्रकार अधिकार प्राप्त होना चाहिये जैसे प्रान्तों के लोगों को प्राप्त है। इस अधिकार के सम्बन्ध में कोई विभेद न होना चाहिये। इस आशा से मैं श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के संशोधन का हृदय से समर्थन करता हूं। इस सम्बन्ध में मैं एक बात और कहना चाहता हूं। भाग 3 के राज्यों में भारत सरकार के आदेश से, अथवा निदेश से, संविधान निर्माण का कार्य रोक दिया गया है। भारत सरकार राज्यों के लिये एक अनुकरणीय संविधान तैयार कर रही है। मैं कह नहीं सकता कि वह काम कितना आगे बढ़ा है। इस प्रश्न को हल करना ही है और तुरन्त ही हल करना है कि राज्यों का संविधान इस संविधान-सभा में तैयार होगा अथवा राज्यों में ही उनकी अपनी-अपनी संविधान सभाओं द्वारा तैयार होगा। चाहे जो कुछ भी हो, देर न की जानी चाहिये क्योंकि जिस संविधान को हम यहां बना रहे है वह भी, जब तक भाग 2 के राज्यों का संविधान तैयार नहीं हो जाता और स्वीकार नहीं हो जाता, प्रवर्त्तन में नहीं लाया जा सकता। इसलिये देर न करनी चाहिये और इस सम्बन्ध में जो कदम भी आवश्यक समझा जाये उठाये जाने चाहिये। मेरे विचार से भाग 3 के राज्यों के लिये तुरन्त ही संविधान तैयार करवाने से संविधान-सभा कोई अनियमित कार्यवाही नहीं करेगी क्योंकि बिना उस संविधान को स्वीकार किये हुए यह संविधान भी प्रवर्त्तन में न लाया जा सकेगा। मुझे आशा है कि इस विषय पर यह सभा तथा भारत सरकार तत्परता से विचार करेंगे।

(संशोधन संख्या 1899 से लेकर 1901 तक उपस्थित नहीं किये गये।)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरे विचार से इस सम्बन्ध में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। मैं श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के संशोधन को स्वीकार करता हूं।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 109 के परन्तुक के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'Provided that the said jurisdiction shall not extend to a dispute to which any State is a party, if the dispute arises out of any provision of a treaty, agreement, engagement, sanad or other similar instrument which provides that the said jurisdiction shall not extend to such dispute.' ''

(परन्तु उक्त क्षेत्राधिकार का विस्तार उस विवाद तक न होगा जिसमें कोई राज्य एक पक्ष हो यदि वह विवाद किसी संधि, करार, वचन-बंध, सनद अथवा इसी

प्रकार की अन्य किसी ऐसी लिखित से उत्पन्न होता हो, जो यह उपबंध करती हो कि उक्त क्षेत्राधिकार का विस्तार ऐसे विवाद तक न होगा।)

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 109 में 'if in so far as' (यदि जहां तक) शब्दों के स्थान में 'if and in so far as' (यदि और जहां तक) शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 109 संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 109, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 110 को उठायेंगे।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** श्रीमान्, एक नवीन अनुच्छेद अर्थात् अनुच्छेद 109 (क) को प्रविष्ट करने के उद्देश्य से मैंने संशोधन संख्या 182 और 183 की सूचना दी है मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि उन्हें स्थगित रखने की आज्ञा दी जाये।

***अध्यक्ष:** उन्हें स्थगित रखा जा सकता है। किन्तु यदि अन्य अनुच्छेदों को स्वीकार करने से ये संशोधन निष्फल हो जायें तो आपको वह स्थिति स्वीकार करनी होगी।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान्, क्या मैं स्थिति स्पष्ट कर सकता हूं? स्थिति यह है कि अनुच्छेद 109 (क) एक स्वावलम्बी अनुच्छेद है इसलिये अध्यक्ष महोदय को जो भय है वह उपस्थित न होगा और यह अनुच्छेद आगे के अनुच्छेदों के स्वीकार होने से निष्फल न होगा। उसका विषय एक नवीन विषय है। यदि अध्यक्ष महोदय की इच्छा हो तो उसे स्थगित रखा जा सकता है।

***अध्यक्ष:** यदि वह निष्फल न हुआ तो उस पर आगे विचार किया जायेगा। इस समय ये दो संशोधन स्थगित किये जाते हैं।

अनुच्छेद 110

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 110 संविधान का अंग बना लिया जाये।''

***श्री राजबहादुर** (संयुक्त राज्य मत्स्य): अध्यक्ष महोदय, आपकी अनुमति से मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 110 के खंड (1) में 'a State' (किसी राज्य) शब्दों के स्थान में 'the territory of India' (भारत राज्यक्षेत्र) शब्द रखे जायें।''

[श्री राजबहादुर]

मुख्यत: दो कारणों से मैं इस संशोधन को उपस्थित करना चाहता हूं। 'एक राज्य' शब्द ऐसे हैं जिनसे इस अनुच्छेद का अर्थ तथा निर्वचन अवश्य ही परिसीमित तथा निर्बन्धित हो जाता है। हम इस सम्भावना की कल्पना आसानी से कर सकते हैं कि किसी अन्य देश को पराजित करके अथवा अन्य प्रकार भी भारत राज्य-क्षेत्र में नये क्षेत्र सम्मिलित किये जा सकते हैं। जहां तक 'भारत राज्य-क्षेत्र' की परिभाषा का सम्बन्ध है। अनुच्छेद 1 के खंड (3) में कहा गया है कि:

''भारत के राज्य-क्षेत्र में–

(क) राज्यों के राज्य-क्षेत्र;

(ख) प्रथम अनुसूची के भाग 4 में उल्लिखित राज्य-क्षेत्र; तथा

(ग) ऐसे अन्य राज्य-क्षेत्र जो अर्जित किये जायें, समाविष्ट होंगे।''

यदि हम 'एक राज्य' शब्दों को रहने देते हैं, तो आगे को जो राज्य-क्षेत्र अर्जित किये जायेंगे अथवा जो स्वेच्छा से भारत के राज्य-क्षेत्र में समाविष्ट होंगे, इस अनुच्छेद की परिधि के अन्दर नहीं आयेंगे और इसलिये, मेरा यह नम्र निवेदन है, कि इन शब्दों में परिवर्तन करने की आवश्यकता है।

यदि हम अनुच्छेद 111 को भी उठायें तो हम देखेंगे कि उसमें 'एक राज्य' शब्द नहीं बल्कि 'भारत राज्य-क्षेत्र' शब्द प्रयोग किये गये हैं। अनुच्छेद 111 इस प्रकार है:

> ''भारत राज्य-क्षेत्र में किसी उच्च न्यायालय के, चाहे तो व्यवहार विषयक चाहे दांडिक चाहे अन्य कार्यवाही में दिये निर्णय, आज्ञप्ति या अन्तिम आदेश की अपील उच्चतम न्यायालय में हो सकेगी''...

इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 112 में भी वही शब्द, अर्थात् 'भारत राज्य-क्षेत्र' प्रयुक्त है। इसलिये यह आवश्यक है कि अनुच्छेद 110 में भी वही शब्द, अर्थात् 'भारत राज्य-क्षेत्र' प्रयुक्त हों न कि 'एक राज्य'। इन कारणों से मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।

(संशोधन संख्या 1903 उपस्थित नहीं किया गया।)

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं संशोधन संख्या 1904 और 1907 को एक साथ उपस्थित करना चाहता हूं क्योंकि वे आपस में सम्बन्धित हैं। श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 110 के खंड (1) में 'as to the interpretation of this Constitution' (इस संविधान का निर्वचन) शब्द निकाल दिये जायें।''

मैं यह भी प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 110 के खंड (2) में 'as to the interpretation of this Constitution (इस संविधान का निर्वचन) शब्द निकाल दिये जायें।''

मेरे विचार से ये आनुषंगिक संशोधन है और उन विधियों के आनुषंगिक संशोधन हैं जो विधानसभा में पारित हो चुके हैं। श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि इन दो संशोधनों का बहुत सांविधानिक महत्त्व है।

अनुच्छेद 110 के खंड (1) में यह उपबंध है कि:

> ''भारत राज्यक्षेत्र के किसी उच्च-न्यायालय के, चाहे तो व्यवहार विषयक चाहे दांडिक चाहे अन्य कार्यवाही में दिये निर्णय, आज्ञप्ति या अन्तिम आदेश की अपील उच्चतम न्यायालय में हो सकेगी यदि वह उच्चतम न्यायालय प्रमाणित कर दे कि उस मामले में इस संविधान के निर्वचन का कोई सारवान विधि प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है।''

मैं अन्त के कुछ शब्दों को अर्थात् 'इस संविधान के निर्वचन का' शब्दों को निकाल देना चाहता हूं। इन शब्दों को निकालने का प्रभाव यह होगा कि किसी उच्च न्यायालय के, चाहे तो व्यवहार विषयक चाहे दांडिक चाहे अन्य कार्यवाही में दिये निर्णय, आज्ञप्ति या अन्तिम आदेश की अपील उच्चतम न्यायालय में हो सकेगी यदि वह उच्च न्यायालय प्रमाणित कर दे कि उस मामले में कोई सारवान विधि प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है। यदि हम जिन शब्दों के सम्बन्ध में आपत्ति की गई है उन्हें रहने देते हैं तो प्रमाणित करने की शक्ति केवल संविधान के निर्वचन की त्रुटियों तक ही सीमित रहेगी और कोई ऐसी विधि-सम्बन्धी त्रुटि होने पर, जिसमें संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त न हो, उच्च न्यायालय प्रमाण-पत्र न दे सकेगा। इसका प्रभाव यह होगा कि दंड प्रक्रिया संहिता साक्ष्य अधिनियम, भारतीय दंड-संहिता आदि में विहित विधि के खंडन का प्रतिकार भी न हो सकेगा। यदि उच्च न्यायालय के निर्णय में कोई बहुत बड़ी त्रुटि भी हो जायेगी तो उस पर भी वह प्रमाण पत्र देने में असमर्थ होगा यद्यपि उसके आधार पर सम्बन्धित पक्ष उच्चतम न्यायालय में अपील कर सकता है।

दूसरा संशोधन खंड (2) के सम्बन्ध में है। उसमें यह उपबंध है कि जहां उच्च न्यायालय ने ऐसा प्रमाण पत्र देना अस्वीकार कर दिया हो वहां, यदि उच्चतम न्यायालय को समाधान हो जाये कि इस मामले में इस संविधान के निर्वचन का सारवान विधि प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है तो वह ऐसे निर्णय की अपील के लिये विशेष इजाजत दे सकेगा। इसलिये हम इस स्थिति में हैं कि यदि संविधान के निर्वचन में त्रुटि हो तो उच्च न्यायालय अपील के लिये प्रमाण पत्र दे सकता है और खंड 2 के अधीन उच्चतम न्यायालय उस दशा में अपील के लिये इजाजत देगा जबकि संविधान को निर्वचन का कोई सारवान विधि प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो। मेरा यह निवेदन है कि यह मसौदा उस समय तैयार किया गया था जबकि प्रिवी कौंसिल प्रकार्य कर रही थी। इस बीच हमने विधान सभा में एक ऐसी विधि स्वीकार की है जिसके अनुसार संघ-न्यायालय को ऐसे मामलों के सम्बन्ध में विचार करने की शक्ति प्राप्त हो गई है जो व्यवहार विषयक हों और प्रिवी कौंसिल में लम्बित हों उसके पूर्व ये दोनों खंड पूर्णतया सार्थक कहे जा सकते थे। पहले संघ-न्यायालय और प्रिवी कौंसिल के बीच काम बंटा हुआ था। संघ न्यायालय को ऐसे मामलों के सम्बन्ध में अपील सुनने का क्षेत्राधिकार प्राप्त था जिनमें संविधान के अर्थात् भारत-शासन-अधिनियम के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होता था। प्रिवी कौंसिल सीधे-सीधे उन अपीलों को सुनती थी जिनमें

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

कोई विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होता था और संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त न होता था। यदि संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होता था तो संघ-न्यायालय के निर्णय की अपील प्रिवी कौंसिल में की जा सकती थी। अब प्रिवी कौंसिल की इस शक्ति का अपहरण हो गया है जब प्रिवी कौंसिल और संघ-न्यायालय की सब शक्तियां उच्चतम न्यायालय को प्राप्त होंगी। अब संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होने पर ही उच्चतम न्यायालय में अपील करने के लिये प्रमाण पत्र देने की उच्च न्यायालय की शक्ति समयोचित नहीं रह गई है। संघ-न्यायालय को प्रिवी कौंसिल की शक्तियां अंशत: प्राप्त रही हैं और उच्चतम न्यायालय को वे अब पूर्णत: प्राप्त होंगी। इस स्थिति में प्रिवी कौंसिल को जो शक्तियां प्राप्त हैं और संघ-न्यायालय को जो शक्तियां अभी तक प्राप्त रही हैं उनका एकीकरण होना चाहिये और वे उच्चतम न्यायालय को प्रदान की जानी चाहियें। वास्तव में चाहे संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो अथवा न हो उच्च न्यायालय को प्रमाणपत्र देने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये। उच्चतम न्यायालय को भी विशेष इजाजत देने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये भले ही संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो या न हो। संविधान के अतिरिक्त अनेक अधिनियमों के सम्बन्ध में भी बहुत बड़ी विधि-सम्बन्धी त्रुटियां हो सकती हैं और यह स्पष्ट है कि इन कारणों से भी उच्च न्यायालय के प्रमाण पत्र के आधार पर अपील करने की आज्ञा दी जानी चाहिये। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 112 में इस स्थिति से कुछ सीमा तक परित्राण पाने का प्रयास किया गया है। वह इस प्रकार है: ''प्रथम अनुसूची के भाग 3 में इस समय उल्लिखित राज्यों के अतिरिक्त भारत के राज्य-क्षेत्र के किसी न्यायालय अथवा न्यायाधिकरण द्वारा, उन मामलों के सम्बन्ध में जिन पर इस संविधान के अनुच्छेद 110 और अनुच्छेद 111 प्रयुक्त नहीं होते हैं, किसी वाद अथवा विषय पर दिये हुए अथवा स्वीकृत निर्णय, आज्ञप्ति अथवा अन्तिम आदेश की अपील करने की विशेष इजाजत उच्चतम न्यायालय स्वविवेक से दे सकता है।' इसलिये जहां कहीं उच्च न्यायालय ने इजाजत न दी हो अथवा अनुच्छेद 110 के खंड (1) के अधीन न दे सका हो अथवा जहां कहीं उच्चतम न्यायालय उस अनुच्छेद के खंड (2) के अधीन विशेष इजाजत न दे सका हो, उच्चतम न्यायालय को विशेष इजाजत देने की अवशिष्ट शक्ति प्राप्त है। इसका परिणाम यह होगा कि यदि किसी मामले के निर्णय में विधि-सम्बन्धी कोई ऐसी बहुत बड़ी त्रुटि हो जाये जिसमें संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त न हो तो उच्च न्यायालय इस सम्बन्ध में प्रमाणपत्र न दे सकेगा। किन्तु अनुच्छेद 112 के अधीन उच्चतम न्यायालय विशेष इजाजत दे सकेगा। वास्तव में विधि-सम्बन्धी कोई बहुत बड़ी त्रुटि होने पर भी उच्च न्यायालय कोई प्रमाण पत्र न दे सकेगा किन्तु उच्चतम न्यायालय विशेष इजाजत दे सकेगा। इस अर्थ में अनुच्छेद 110 का खंड (2), जिसके अधीन संघ-न्यायालय किसी विधि प्रश्न में संविधान के निर्वचन का कोई प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होने पर इजाजत दे सकेगा और अनुच्छेद 112, जिसके अधीन उच्चतम-न्यायालय अन्य मामलों में विशेष इजाजत दे सकता है, परस्पर विरोधी हैं। इसलिये अनुच्छेद 110 के खंड (2) को और अनुच्छेद 112 को मिलाकर उच्चतम न्यायालय को किसी ऐसे मामले में विशेष इजाजत देने की शक्ति दी गई है जिसमें कोई विधि प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो। यद्यपि उच्चतम न्यायालय

को यह शक्ति दी गई है परन्तु उच्च न्यायालय विधि-सम्बन्धी किसी ऐसी त्रुटि के सम्बन्ध में ही प्रमाण-पत्र दे सकता है जिसमें संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो। यदि विधि सम्बन्धी त्रुटि का विषय इतना गम्भीर है कि उच्चतम न्यायालय को उसकी शुद्धि करनी होगी तो उच्च न्यायालय को प्रमाण पत्र देने की शक्ति भी दी जानी चाहिये ताकि उच्चतम न्यायायल में अपील की जा सके। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उच्चतम न्यायालय को विशेष इजाजत देने का प्राधिकार प्राप्त है किन्तु यह बहुत ही असुविधाजनक और बहुव्ययसाध्य होगा। कोई पक्ष बड़ी आसानी से उच्च न्यायालय को आवेदन पत्र दे सकता है किन्तु उच्चतम न्यायालय से विशेष इजाजत प्राप्त करने में देर ही न होगी बल्कि बहुत धन भी व्यय करना होगा और कई लोग यह सब न कर सकेंगे। इस स्थिति में प्रस्तावित संशोधन का प्रभाव यह होगा कि उच्च न्यायालय को किसी विधि प्रश्न के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय में अपील करने के लिये प्रमाणपत्र देने की शक्ति प्राप्त हो जायेगी।

***डा. बक्शी टेकचन्द** (पूर्वी पंजाब : जनरल): साधारण मामलों में भी?

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** जी हां।

***डा. बक्शी टेकचन्द:** इसका आशय अनुच्छेद 111(1) (क) (ख) और (ग) से पूरा हो जाता है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** कठिनाई यह है कि इन उपबन्धों का मसौदा उस अधिनियम को स्वीकार करने के पूर्व तैयार किया गया था जिससे हमने प्रिवी कौंसिल के अपील सुनने के अधिकार का अपहरण किया है। 110, 111 और 112 अनुच्छेदों को मिला देना चाहिये और उनका मसौदा फिर से तैयार करना चाहिये। वास्तव में कई बातें दुहराई गई हैं और कई बातें छूट गई हैं। इस दोष को दूर करने का सबसे आसान तरीका यह है कि यह कहा जाये कि यदि किसी मामले में विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो तो उच्चतम न्यायालय को प्रमाण-पत्र देने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये और ऐसे मामलों में, जिनमें विधि प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हों, उच्चतम न्यायालय को भी इजाजत देने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये।

***अध्यक्ष:** क्या अनुच्छेद 111 में दांडिक मामले भी आ जाते हैं?

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** जी नहीं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** हम इसके लिये एक पृथक् अनुच्छेद में उपबंध कर रहे हैं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं आपके इस ओर ध्यान आकृष्ट करने के लिये आपका आभारी हूं कि अनुच्छेद 111 में दांडिक मामलों के सम्बन्ध में उपबंध नहीं किया गया है। वास्तव में यह कठिनाई अनुभव की जाती है और यह एक विसंगति है कि यद्यपि हम व्यवहार विषयक साधारण मामलों में संघ-न्यायालय में अपील कर सकते हैं किन्तु दंड-विषयक मामलों के सम्बन्ध में, जिनमें नागरिकों के जीवन और सम्पत्ति का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

होता है, हमें सीधे उच्चतम न्यायालय में ही अपील करनी होगी। मेरा यह सुझाव है कि इस कसौटी के स्थान में कि किसी मामले में संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है अथवा अन्य विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है यह कसौटी रखनी चाहिये, कि कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है या नहीं चाहे वह संविधान के निर्वचन का प्रश्न हो या अन्य कोई प्रश्न। किसी ऐसे विधि-प्रश्न में, जिसमें संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो और अन्य विधि-प्रश्नों में विभेद करना उस समय तर्कसंगत कहा जा सकता था जबकि संघ-न्यायालय और प्रिवी कौंसिल के क्षेत्राधिकार अलग-अलग थे और प्रश्न यह उठता था कि क्या यह ऐसी विधि है जिसमें संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है अथवा अन्य प्रकार की विधि है। किन्तु चूंकि अब उच्चतम न्यायालय को प्रिवी कौंसिल के प्रकार्य करने होंगे इसलिये यह बारीक विभेद, जो पहले तर्कसंगत कहा जा सकता था, अब अनावश्यक है। इसलिये इस विभेद को पूर्णतया मिटा देना चाहिये।

श्रीमान्, जैसा कि आपने बताया है, इसमें दांडिक मामलों का समावेश नहीं है और वे अनुच्छेद 111 के विषय नहीं हैं। किन्तु हमसे कहा गया है कि एक अन्य व्यवस्था की जा रही है। हम यह जानना चाहते हैं कि महत्त्वपूर्ण अनुच्छेदों को बाद में प्रविष्ट करने का इस प्रकार जो प्रयास किया जाता है वह कब समाप्त होगा। वास्तव में सदस्यों के सम्मुख अनेक महत्त्वपूर्ण संशोधनों को जिस ढीले ढाले ढंग से उपस्थित किया जाता है वह उनकी समझ के बाहर है। बिना पर्याप्त समय दिये हुए हमारे लिये इन धाराओं के पूरे आशय को समझना कठिन हो जाता है। सदस्यों के सम्मुख पूर्ण चित्र उपस्थित किया जाना चाहिये। दांडिक मामलो का उल्लेख नहीं किया गया है और हमसे कहा गया है कि एक अन्य उपबंध रखा जा रहा है। मैं आदरपूर्वक यह सुझाव उपस्थित करना चाहता हूं कि अनुच्छेद 110, 111 और 112 पर फिर विचार होना चाहिये। मेरे मतानुसार अनुच्छेद 112 बिल्कुल अनावश्यक है। यदि हम उच्च न्यायालयों को विधि-प्रश्नों के सम्बन्ध में प्रमाण-पत्र देने की शक्ति प्रदान कर देते हैं और उच्च न्यायालयों के न देने पर उच्चतम न्यायालय को अपील करने की इजाजत देने की शक्ति प्रदान कर देते हैं तो सारा प्रश्न हल हो जाता है। संविधान के निर्वचन के प्रश्न और अन्य विधि-प्रश्नों में विभेद करने और दांडिक तथा व्यवहार-सम्बन्धी मामलों में विभेद करने के स्थान में कसौटी यह होगी कि कोई सारवान विधि-प्रश्न उपस्थित है या नहीं और हमें एक उपबंध उच्च न्यायालय के सम्बन्ध में और एक उपबंध उच्चतम न्यायालय की विशेष इजाजत के सम्बन्ध में रखना होगा। मुझे विश्वास है कि मेरे बताये हुए उपाय से यह विषय सरल हो जायेगा। मेरे विचार से यह आवश्यक है कि इस सम्बन्ध में एक नया मसौदा तैयार किया जाये।

***अध्यक्षः** इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में कुछ अन्य संशोधन भी हैं।

(संशोधन संख्या 1905 और 1906 उपस्थित नहीं किये गये।)

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 1906 के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले दो संशोधन हैं किन्तु मेरे विचार से मि. नजीरुद्दीन अहमद ने अभी जो संशोधन उपस्थित किया है उससे उनका आशय पूरा हो जाता है। उनकी शब्दावली बहुत कुछ उसीकी शब्दावली के समान है। संशोधन संख्या 148 और 149।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** मैं अपना संशाधन नहीं उपस्थित करना चाहता।

***अध्यक्षः** तब संशोधन संख्या 149 भी नहीं उपस्थित किया जा सकता।

(संशोधन संख्या 1908 उपस्थित नहीं किया गया।)

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 1909 डा. अम्बेडकर के नाम से है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 110 के खंड (3) 'not only on the ground that any such question as aforesaid has been wrongly decided, but also' (ऐसे किसी पूर्वोक्त प्रश्न के अशुद्ध निर्णय हो जाने के आधार पर ही नहीं बल्कि) शब्दों के स्थान में 'on the ground that any such question as aforesaid has been wrongly decided and with the leave of the Supreme Court' (ऐसे किसी पूर्वोक्त प्रश्न के अशुद्ध निर्णय हो जाने के आधार पर, तथा उच्चतम न्यायालय की इजाजत से) शब्द रखे जायें।''

वर्तमान अनुच्छेद की भाषा थोड़ी बहुत अव्यवस्थित है और इसी कारण उसमें परिवर्तन किया जा रहा है ताकि उसका पाठ सरल हो जाये। यह खंड इस प्रकार हो जायेगा:

> ''जहां ऐसा प्रमाण-पत्र अथवा ऐसी इजाजत दे दी गई हो वहां मामलें में कोई पक्ष, ऐसे किसी पूर्वोक्त प्रश्न के अशुद्ध निर्णय हो जाने के आधार पर, तथा उच्चतम न्यायालय की इजाजत से अन्य किसी आधार पर, उच्चतम न्यायालय में अपील कर सकेगा।''

(संशोधन संख्या 1910 उपस्थित नहीं किया गया।)

***अध्यक्षः** इन अनुच्छेद के सम्बन्ध में इतने ही संशोधन हैं। यदि कोई सज्जन इस विषय में बोलना चाहते हैं तो अब बोल सकते हैं।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मि. नजीरुद्दीन अहमद ने जो विचार प्रकट किये हैं उनमें से कुछ के सम्बन्ध में मैं कुछ बातें कहना चाहता हूं। इन अनुच्छेदों में यह योजना सन्निहित है। जहां तक अनुच्छेद 110 का सम्बन्ध है, चाहे मामला किसी प्रकार का हो यदि उसमें संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है तो उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है। उसका इससे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है कि विषय का महत्त्व क्या है? यह प्रश्न किसी भी प्रक्रिया के सम्बन्ध में उठाया जा सकता है। वह दांडिक प्रक्रिया के सम्बन्ध में उठाया जा सकता है और व्यवहार-प्रक्रिया के सम्बन्ध में भी उठाया जा सकता है। यह प्रश्न किसी ऐसे कार्य के सम्बन्ध में भी उठाया जा सकता है जिसके प्रसंग में कुछ लाख रुपये अथवा कुछ सौ रुपये का उल्लेख हो। इसका अनुच्छेद 110 से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है परन्तु इस सम्बन्ध में विभिन्न अनुच्छेदों की योजना ध्यान में रखना आवश्यक है। अनुच्छेद 111 में उच्चतम न्यायालय में अपील करने के सामान्य अधिकार का उल्लेख है। किन्तु उच्चतम न्यायालय

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

में किसी ऐसी सामान्य अपील के सम्बन्ध में, जिसमें दोनों पक्षों के नागरिकता के अधिकार अन्तर्ग्रस्त हों, वादी-प्रतिवादी में से किसी को भी इसकी स्वतंत्रता होगी कि वह किसी भी सांविधानिक प्रश्न को उठाये, भले ही उसने अनुच्छेद 110 में सन्निहित उपचार का उपयोग न किया हो, क्योंकि सिद्धांत यह है कि जब उच्चतम न्यायालय में अपील की जा रही हो तो वादी-प्रतिवादी में से किसी को भी इसकी स्वतंत्रता होगी कि वह किसी सांविधानिक प्रश्न को उठाये और यह प्रमाणित करे कि वह सारे मामले के निर्णय से सम्बन्धित हैं। अब यह कहा जा रहा है कि प्रत्येक ऐसे मामले में, जिसमें विधि का अशुद्ध निर्वचन किया गया हो, चाहे उसका विषय किसी भी प्रकार का क्यों न हो, उच्चतम न्यायालय में अपील का अधिकार होना चाहिये। मेरे विचार से मि. नजीरुद्दीन अहमद के तर्क का यही सार था। इस प्रकार के मामले अनुच्छेद 111 (ग) के अधीन आयेंगे। कई प्रकार के अधिनियम, विनियम तथा आदेश हैं। इस विस्तृत देश के विभिन्न न्यायालयों में कई साधारण प्रश्न भी उठाये जा सकते हैं। प्रत्येक मामला, चाहे उसका विषय कुछ भी हो, उच्चतम न्यायालय के ही सम्मुख न आना चाहिये। किन्तु साथ ही किसी मामले का विषय साधारण होने पर भी उसके सम्बन्ध में ऐसा प्रश्न उठ सकता है जिसका अन्य मामलों पर तथा अन्य वादी-प्रतिवादियों पर प्रभाव पड़े और यह ठीक ही है कि उच्चतम न्यायालय को अपील सुनने का क्षेत्राधिकार प्राप्त हो। इसलिये अनुच्छेद 111 के खंड (ग) में यह साधारण उपबंध रखा गया है ''कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील के लायक है।'' इसका मामले के विषय से कोई सम्बन्ध नहीं है। उसका विषय कुछ भी हो सकता है। किन्तु यदि उसका प्रभाव जनसाधारण पर पड़ता हो अथवा उसका इसी प्रकार का कोई विशेष महत्त्व हो तो उच्च न्यायालय के यह प्रमाणित करने पर कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील के लायक है, वादी अथवा प्रतिवादी में से किसी को भी उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार होगा। अनुच्छेद 111 के अतिरिक्त अनुच्छेद 112 में भी उच्चतम न्यायालय को ''भारत राज्य-क्षेत्र में किसी न्यायालय अथवा न्यायाधिकरण द्वारा दिये हुए किसी निर्णय, आज्ञप्ति अथवा अन्तिम आदेश की अपील'' के लिये विशेष इजाजत देने का अधिकार है। इससे उच्चतम न्यायालय को विस्तृत शक्ति प्राप्त हो जाती है। इस सम्बन्ध में भी सब कुछ उच्चतम न्यायालय के स्वविवेक पर ही निर्भर रहेगा। वह मामला दांडिक मामला अथवा व्यवहार विषयक मामला अथवा कोई छोटा मामला या बड़ा मामला हो सकता है। किन्तु फिर भी अनुच्छेद 112 के अधीन किसी वादी अथवा प्रतिवादी को उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार प्राप्त होगा। यदि उस मामले का विशेष महत्त्व होगा तो कोई कारण नहीं है कि उच्चतम न्यायालय विशेष इजाजत न दे। इसके अतिरिक्त उच्चतम न्यायालय को सभी ऐसे मामलों के सम्बन्ध में, जिनमें मूलाधिकारों का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो, प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है। हमें अन्य किस रक्षा-कवच की आवश्यकता है। यदि न्यायालयों को वादी-प्रतिवादियों का क्रीड़ास्थल बनाना है तो बात दूसरी है अन्यथा अपील के अधिकारों को बढ़ाने का कोई अर्थ नहीं है। यदि मूलाधिकार किसी मामले में अन्तर्ग्रस्त है तो आपको अपील करने का तथा उच्चतम न्यायालय से हस्तक्षेप करवाने का अधिकार प्राप्त है। आपको विशेष इजाजत लेकर हस्तक्षेप करवाने का अधिकार प्राप्त है।

मुझे विश्वास है कि बाद को दंड-विषयों के सम्बन्ध में यह संशोधन उपस्थित किया जायेगा कि संसद को दंड विषयों के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय को क्षेत्राधिकार प्रदान करने की शक्ति दी जाये। श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि उच्चतम न्यायालयों के सम्बन्ध में इतना तो कहा ही जा सकता है कि उसे संसार के अन्य भागों के श्रेष्ठ न्यायालयों से अधिक विस्तृत क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं यह अन्य देशों के संविधानों को देखने से स्पष्ट हो जायेगा। इस स्थिति में सभी मामले, चाहे उनमें सांविधानिक प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो या न हो, उच्चतम न्यायालय के सम्मुख लाये जा सकते हैं और वादी तथा प्रतिवादी के विवाद का निर्णय हो सकता है।

अनुच्छेद 110 का सम्बन्ध सांविधानिक प्रश्नों से है। उसके अधीन किसी मामले में सांविधानिक के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होना चाहिये। उसके उद्देश्य के लिये यह पर्याप्त है। यदि कभी किसी सांविधानिक प्रश्न के सम्बन्ध में कोई अपील की जाये तो उच्चतम न्यायालय को इसकी स्वतंत्रता होगी कि वह केवल सांविधानिक प्रश्न को ही नहीं बल्कि पूरी अपील को सुने अर्थात् यदि लोकहित के लिये आवश्यक हो तो विवाद का महत्त्व देखकर सारे मामले पर विचार करे। वास्तव में संघ न्यायालय के अपने अनुभव से मैं कह सकता हूं कि कई मामलों में जिनके सम्बन्ध में केवल सांविधानिक प्रश्नों के आधार पर ही अपील की गई थी, उच्चतम न्यायालय ने मामलों के विषय पर विचर किया और अन्य ही प्रश्नों के सम्बन्ध में निर्णय किया। कभी वादी अथवा प्रतिवादी सांविधानिक प्रश्न का केवल सहारा लेकर अपने मामले की अपील करना चाहता है। वह सांविधानिक प्रश्न को उठाता है, उच्च न्यायालय उसे इजाजत देता है और मामला उच्चतम न्यायालय के सामने आ जाता है। इसके बाद वकील यह अनुभव करता है कि सांविधानिक प्रश्न में अधिक बल नहीं है और वह सारा ध्यान अन्य प्रश्नों की ओर देता है। यह ठीक है किन्तु हमें इससे आगे बढ़ कर यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि भारत के किसी भी न्यायालय में यदि किसी मामले में कोई विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो तो संघ न्यायालय में अपील की जा सकती है। इससे वकीलों का तथा धनी वादी प्रतिवादियों का हितसाधन हो सकता है किन्तु इससे देश का हितसाधन कदापि न होगा।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): श्रीमान्, मुझे आशा है कि मैं ऐसे क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर रहा हूं जिससे देवदूतों को भी भय होता है। किन्तु अपने माननीय मित्र मि. नजीरुद्दीन अहमद के भाषण से मुझे भ्रम हो गया और वह मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर के संशोधन से और भी बढ़ गया।

मैं यह सीधा सादा सवाल पूछना चाहता हूं कि क्या अब पहले के समान दांडिक मामले में सिद्धदोष किसी व्यक्ति को उच्चतम न्यायालय में अपील करने, पुनर्विचार कराने अथवा इसी प्रकार की कोई बात करवाने का अधिकार प्राप्त होगा या नहीं? मेरे विचार से इस सभा में जो सदस्य वकील हैं उनको अच्छी प्रकार स्मरण होगा कि कम से कम

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

दो महत्त्वपूर्ण मामलों में अभियुक्त अन्त में मृत्युदंड से मुक्त हो गये। मैं यह जानना चाहता हूं कि अनुच्छेद 110, 111, 112 आदि के उपबंधों में उच्चतम न्यायालय से इस प्रकार का उपचार प्राप्त करने की व्यवस्था है या नहीं? श्रीमान् हम यह देखते हैं कि किसी मामले में सांविधानिक प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होने पर ही हमें प्रमाण पत्र प्राप्त हो सकता है। किन्तु यदि अन्य किसी प्रकार बहुत अन्याय हो गया हो तो उच्च न्यायालय से प्रमाण पत्र प्राप्त करने अथवा उच्चतम न्यायालय से इजाजत लेने का कोई उपाय नहीं है। अपील तभी की जा सकती है जब यह प्रमाणित हो जाये कि सम्बन्धित विषय संविधान का है और उसके उपरांत ही आज्ञा मिलने पर अन्य प्रश्नों को भी उठाया जा सकता है। मूल अनुच्छेद के अधीन यदि यह दिखाया जा सके कि संविधान का अतिक्रमण हुआ है और उच्च न्यायालय अथवा उच्चतम न्यायालय से इस आधार पर प्रमाण पत्र मिल सके तो अपील की जा सकती है और ऐसे अन्य प्रश्न भी उठाये जा सकते हैं जिनका सांविधानिक प्रश्न से कोई सम्बन्ध न हो।

अब पहली ही मंजिल पर दरवाजा बन्द कर दिया है। यह पता लगाना बहुत कठिन है कि किन मामलों में संविधान का अतिक्रमण हुआ हैं। जब संविधान के उपबंधों के विरुद्ध कोई विधि अथवा अध्यादेश स्वीकार किया गया हो तभी हम यह जान सकते हैं कि संविधान का अतिक्रमण हुआ है। किन्तु अधिकतर मामलों के सम्बन्ध में इस प्रकार की शिकायत न की जा सकेगी। तब क्या उस स्थिति में किसी ऐसे व्यक्ति के लिये, जिसे मृत्युदंड अथवा अन्य कोई दंड का निर्णय सुनाया गया हो, यह सम्भव होगा कि वह किसी बहाने से उच्चतम न्यायालय में अपील कर सके?

मेरी समझ में नहीं आता कि हम यह क्यों कहते हैं कि संविधान का अतिक्रमण होने पर न्यायाधिकरण के सम्मुख कोई भी प्रश्न उठाया जा सकता है। यह हो सकता है कि संविधान का बहुत कम अतिक्रमण हुआ हो और वास्तव में किसी साधारण विधि का अतिक्रमण हुआ हो। इन मामलों में भी उच्चतम न्यायालय उपचार करने के लिये सक्षम है। किन्तु यदि आप यह प्रमाणित न कर सकें कि संविधान का अतिक्रमण हुआ है तो चाहे कितना ही अधिक अन्याय क्यों न हुआ हो आपको उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार नहीं है। श्रीमान् मैं यह देखता हूं कि अनुच्छेद 111 में व्यवहार विषयक मामलों के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है। आखिर सम्पत्ति और धन की क्षति को उतना महत्त्व नहीं दिया जा सकता जितना कि जीवन और स्वतंत्रता की क्षति को। जो लोग व्यवहार न्यायालय के निर्णय पर आपत्ति करते हों उनके लिये उच्चतम न्यायालय में अपील करने के लिये काफी गुंजाइश है। किन्तु उन लोगों के लिये आपने एक भी दरवाजा खुला नहीं रखा है जो स्वतंत्रता के अथवा जीवन के अपहरण के लिये दंड न्यायालय द्वारा सिद्धदोष अथवा दंडित हुआ हो। मेरे विचार से इससे हमें इस समय प्रिवी कौंसिल में अपील करने के जो अधिकार प्राप्त हैं उनका भी अपहरण हो जाता है।

इसके अतिरिक्त मैं यह देखता हूं कि उच्चतम न्यायालय में यह उल्लेख है कि उच्चतम न्यायालय को यह विश्वास हो जाने पर कि किसी निर्णय का प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है

वह अन्य कारणों के आधार पर भी हस्तक्षेप कर सकता है अथवा अपील करने की इजाजत दे सकता है। अनुच्छेद 112 इस प्रकार है:

> ''उच्चतम न्यायालय स्वविवेक से भारत राज्य-क्षेत्र के किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा किसी वाद या विषय में दिये हुये किसी निर्णय, आज्ञप्ति अथवा अन्तिम आदेश के लिये विशेष इजाजत दे सकेगा...

मैं यह जानना चाहता हूं कि यहां क्या ''निर्णय'' शब्द में दंड विषयक मामलों में दिया हुआ 'निर्णय' भी सन्निहित है?

अनुच्छेद 110 में ''दंड न्यायालयों'' का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। यह कहा गया है कि किसी व्यवहार अथवा दंड विषयक अथवा अन्य प्रकार की कार्यवाही में किसी राज्य के उच्च न्यायालय के निर्णय, आज्ञप्ति अथवा साधारण आदेश की अपील उच्चतम न्यायालय में की जा सकती है। अनुच्छेद 111 में केवल व्यवहार न्यायालयों का ही उल्लेख किया गया है और दंड न्यायालयों का उल्लेख नहीं किया गया है। अनुच्छेद 112 में केवल 'निर्णय' का उल्लेख है और इसका उल्लेख नहीं है कि वह निर्णय व्यवहार न्यायालय का है अथवा दंड न्यायालय का। अनुच्छेद 113 में स्पष्ट शब्दों में यह कहा गया है कि यदि उच्च न्यायालय की किसी कार्यवाही अथवा विधि के निर्वचन के सम्बन्ध में कोई सन्देह हो तो मामला उच्चतम न्यायालय के सामने रखा जा सकता है। उसमें भी दंड तथा व्यवहार विषयक तथा अन्य प्रकार की कार्यवाही का स्पष्ट उल्लेख है। इस प्रकार इन अनुच्छेदों के अध्ययन के उपरांत यह निर्वचन किया जा सकता है कि जब तक कि शोकाकुल पक्ष यह प्रमाणित न करे कि उसके मामले में संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है तब तक दंड न्यायालय के निर्णय के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय को कोई क्षेत्राधिकार प्राप्त नहीं है। अनुच्छेद 111 के सम्बन्ध में इस प्रकार का कोई निर्बन्धन नहीं रखा गया है और न अनुच्छेद 113 के सम्बन्ध में ही इस प्रकार का कोई निर्बन्धन है। इसलिये, श्रीमान्, मेरा प्रश्न बहुत सरल है। इस समय प्रिवी कौंसिल उन दंड विषयक मामलों में हस्तक्षेप कर सकती है जिनमें विधि के आदेश-मूलक उपबंधों का अतिक्रमण हुआ हो। इन अनुच्छेदों में इस प्रकार का कोई उपबंध नहीं है और यदि इस प्रकार के उपबंध को स्थान दिया गया तो मुझे प्रसन्नता ही होगी।

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, डा. अम्बेडकर के संशोधन के संबंध में मुझे एक शिकायत है। अनुच्छेद 110 के खंड (3) में, उसके पूर्व रूप में, यह कहा गया है:

> ''जहां ऐसा प्रमाण-पत्र अथवा ऐसी इजाजत दे दी गई हो वहां मामले में कोई पक्ष, ऐसे किसी पूर्वोक्त प्रश्न के अशुद्ध निर्णय हो जाने के आधार पर ही नहीं बल्कि अन्य आधार पर भी उच्चतम न्यायालय में अपील कर सकेगा।''

श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि डा. अम्बेडकर के संशोधन के आशय की तुलना में अपने पहले रूप में इस खंड का आश्रय अधिक उदारतापूर्ण है।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** श्रीमान्, मि. नजीरुद्दीन के समान मुझे भी यह शिकायत है कि उच्चतम न्यायालय के सम्बन्ध में जो उपबंध रखे गये हैं वे इतने पेचीदे हैं कि उन्हें मेरी जैसी साधारण बुद्धि का मनुष्य नहीं समझ सकता है। जो संशोधन उपस्थित किये गये हैं वे इतने स्पष्ट नहीं हैं कि वे संविधान के निर्माताओं के आशय को पूर्णतया व्यक्त कर सकें।

श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र मि. नजीरुद्दीन अहमद ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया है कि अनुच्छेद 110 के खंड (1) और (2) में संविधान के निर्वचन के सम्बन्ध में जो शब्द रखे गये हैं वे निकाल दिये जायें। इस पर यह आपत्ति की गई है कि यदि ये शब्द निकाल दिये जायेंगे तो दरवाजा बहुत खुल जायेगा और मुकदमेबाजी इतनी बढ़ जायेगी कि न्यायालय उसका भार न उठा सकेंगे। श्रीमान्, इस सम्बन्ध में मैं नम्रतापूर्वक यह आपत्ति करना चाहता हूं कि हम प्रतिदिन यह घोषित करते रहे हैं कि हम सभी लोगों को समान स्थान तथा समान अवसर देना चाहते हैं और यह कि विधि के समक्ष सभी लोग समान समझे जायेंगे। श्रीमान्, मैं यह बताना चाहता हूं कि ऐसे मामलों में, जिनका सम्बन्ध 20,000 रु. अथवा इससे अधिक रुपये की सम्पत्ति से होगा, उच्चतम न्यायालय में सीधे-सीधे अपील की जा सकेगी और ऐसे मामलों में भी जिनमें कोई विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो और उच्च न्यायालय यह प्रमाणित करे तो उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती हैं। उन गरीब लोगों का क्या होगा जिनके पास इतनी बहुमूल्य सम्पत्ति नहीं है? किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसके पास केवल 5,000 रु. की सम्पत्ति हो किसी मुकदमे के सम्बन्ध में अपील करने का अधिकार क्यों न हो? मेरे मतानुसार संविधान के निर्वचन-सम्बन्धी शब्दों में अनुच्छेद 110 का लाभप्रद प्रभाव इतना कम हो जायेगा कि बहुत कम मामलों में अपील की जा सकेगी।

दंड विषयक क्षेत्राधिकार के सम्बन्ध में भी मुझे आपत्ति है और मुझे तो यह दिखाई देता है कि यह सभा व्यवहार वेत्ता वकीलों से ही परिपूर्ण है और उन्हें उच्चतम न्यायालय के दंड विषयक क्षेत्राधिकार की कोई चिन्ता नहीं है। अनुच्छेद 110 में 'दंड' शब्द का उल्लेख है किन्तु दंड-विषयक ऐसे बहुत कम मामले होंगे जिनमें संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होगा। ऐसे सारवान विधि-प्रश्न उठ सकते हैं जिनका लोगों के जीवन पर तथा उनकी स्वतंत्रता पर प्रभाव पड़े किन्तु जब तक इनका सम्बन्ध संविधान के निर्वचन से न होगा तब तक ये अनुच्छेद 110 की परिधि से बाहर रहेंगे। इसी प्रकार अनुच्छेद 111 भी व्यवहार-विषयक मामलों तक ही सीमित हैं। यह कहा जायेगा, और यह कहा भी गया है, कि अनुच्छेद 112 का सम्बन्ध कुछ सीमा तक उच्चतम न्यायालय के दंड-विषयक क्षेत्राधिकार से है। इसके अतिरिक्त डा. अम्बेडकर ने अपने संशोधन में कहा है कि संसद उच्चतम न्यायालय के दंड-विषयक क्षेत्राधिकार के सम्बन्ध में विधि निर्मित कर सकती है। मुझे यह आशंका है कि इसमें वर्षों लग जायेंगे। हम प्रिवी कौंसिल से तो शक्ति लेने जा रहे हैं परन्तु संसद को अभी विधि निर्माण करना है। इस बीच क्या होगा? बहुत से लोग इच्छा होने पर भी उच्चतम न्यायालय में अपील न कर सकेंगे। मैं यह चाहता हूं कि जो व्यक्ति अपने जीवन अथवा अपनी सम्पत्ति से वंचित किया जा रहा हो उसे अपील करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त होना चाहिये और उसे इसकी आवश्यकता न रहनी चाहिये कि वह विशेष इजाजत ले। हमें यह विदित है कि साधारण मामलों में

प्रिवी कौंसिल हस्तक्षेप नहीं करती है किन्तु ऐसे कई मामलों का अभिलेख है जिनमें प्रिवी कौंसिल के न्यायाधीशों को अन्तर्वेदना का अनुभव हुआ और उन्होंने साधारण प्रश्नों को भी विधि-प्रश्नों का रूप दे दिया।

श्रीमान्, मेरा तर्क यह है कि जब हम इस देश के लिये एक नवीन संविधान का निर्माण कर रहे हैं तो हमें क्षेत्राधिकार को विस्तृत बनाना चाहिये और ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये जिससे साधारण लोगों के प्रति सभी ऐसे मामलों में न्याय हो सके जो पुनर्विचार के लायक हों। यह ठीक है कि अपील के लिये विशेष इजाजत लेने की व्यवस्था है। किन्तु यह इजाजत दी भी जा सकती है और नहीं भी दी जा सकती है। यह स्वविवेक का प्रश्न है। मैं यह चाहता हूं कि यदि किसी व्यक्ति को मृत्युदंड दिया गया हो अथवा सरकार के अपील करने पर मुक्ति के आदेश का खंडन करके उच्च न्यायालय ने उसे सिद्धदोष घोषित किया हो तो किसी उपबंध के अधीन उसे अपील करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त होना चाहिये।

श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने यह कहा है कि यदि अनुच्छेद 110 को अधिक विस्तृत आशय का बनाया गया तो विधि के अशुद्ध निर्वचन के सम्बन्ध में बहुत से मामले उठ खड़े होंगे और मुकदमेबाजी बढ़ जायेगी। परन्तु क्या मैं यह निवेदन कर सकता हूं कि यह 'सारवान विधि-प्रश्न' शब्द आये हैं? जब तक कि भारत के सभी राज्यक्षेत्रों में समान विधि प्रवर्त्तन में लाने का उद्देश्य न हो तब तक उच्चतम न्यायालय को ये शक्तियां दी ही क्यों जाये क्योंकि निर्णयों में जो विधि-सम्बन्धी घोषणा होगी उसका प्रभाव विधि के समान ही होगा? इसलिये मेरा यह निवेदन है कि किसी विधि प्रश्न को हल करने से मुकदमेबाजी बढ़ेगी नहीं। इसके विपरीत यदि वह प्रश्न हमेशा के लिये हल कर दिया गया तो मुकदमेबाजी समाप्त हो जायेगी।

यह भी कहा गया है कि यदि मृत्युदंड के मामलों में इस प्रकार का अवसर दिया गया तो अपीलों के कारण इतना काम बढ़ जायेगा कि अधिक न्यायाधीशों की आवश्यकता होगी। यह हो सकता है। मैं यह नहीं कहता कि काम नहीं बढ़ेगा। किन्तु देश को इसमें कोई दिलचस्पी नहीं है कि किसी एक व्यक्ति को 20,000 रु. की सम्पत्ति का अधिकार हो या किसी अन्य व्यक्ति को। केवल उच्च न्यायालय को हमेशा के लिये इसका निर्णय कर देना होगा कि किसका उस पर अधिकार है। व्यवहार-सम्बन्धी अधिकारी की रक्षा के लिये इतना पर्याप्त है। किन्तु जीवन और दैहिक स्वातन्त्र्य का प्रश्न दूसरे प्रकार का है। जिन लोगों को गलती से मृत्यु-दंड दे दिया जाता है उनको पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता। चाहे कितनी ही व्यवहार सम्बन्धी स्वतंत्रतायें क्यों न हो किन्तु उनसे अधिक महत्त्व है जीवन का। मेरा यह निवेदन है कि यद्यपि ऐसे व्यवहार-वादों में, जिनमें लगभग 20,000 रु. की राशि अन्तर्ग्रस्त हो, दो या तीन अपीलों की व्यवस्था की गई है किन्तु मृत्यु दंड के मामलों में केवल एक बार अपील की जा सकती है। बहुत समय से यह शिकायत की जाती रही है और यह सभी वकीलों को विदित है कि न्यायालयों में कई मामलों में अन्याय होता है। यदि हम दोषसिद्धियों की तुलना में अपीलों की संख्या की तुलना करें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि बहुत से मामलों में अपील अस्वीकार कर दी जाती है। यह सच है कि प्रारम्भिक न्यायालयों में यह आवश्यक नहीं है कि न्याय ही हो।

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

मैं जिला न्यायालयों पर आपत्ति नहीं कर रहा हूं। दंगे-फसाद के मामलों में, जिनमें पांच से अधिक व्यक्ति दोषी ठहराये जाते हैं, कई निर्दोष व्यक्ति भी फ्रांस लिये जाते हैं। इस विषय में मैं अधिकृत रूप से मत प्रकट कर सकता हूं। मैं एक वकील हूं और बहुत वर्षों से दंड-विषयक मामलों की वकालत करता रहा हूं। यदि हमें लोगों के प्रति न्याय करना है तो हमें यह उपबंध रखना चाहिये कि मृत्यदंड के सभी मामलों में लोगों को अपील करने का अधिकार होना चाहिये। जब हम अन्य अनुच्छेदों पर विचार करेंगे तो हमें स्मरण रखना होगा कि यदि इस अनुच्छेद में परिवर्तन नहीं किया गया तो उसके अधीन जिन अपीलों की मैंने चर्चा की है वे न की जा सकेंगी।

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, मैं मि. नजीरुद्दीन अहमद के संशोधन का विरोध करने के लिये उठा हूं। इस अनुच्छेद की योजना वही है जो भारत सरकार के अधिनियम की धारा 205 की है। उसकी भाषा इस प्रकार है, ''यदि उच्च न्यायालय यह प्रमाणित करे कि मामले में इस अधिनियम के निर्वचन के सम्बन्ध में कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है।'' अनुच्छेद 111 भारत सरकार के अधिनियम की धारा 206 की पुनरुक्ति है मि. नजीरुद्दीन अहमद ने जिन मामलों का उल्लेख किया है वे अनुच्छेद 111 (ग) के अंतर्गत आ जाते हैं। जिसमें यह कहा गया है कि ''मामला उच्चतम न्यायालय में अपील करने के लायक है।''

इसके अतिरिक्त मैं यह बताना चाहता हूं कि दंड-विषयक मामले अनुच्छेद 112 में आ जाते हैं। जो मामले उच्चतम न्यायालय के सामने उपस्थित किये जाने लायक होंगे उनको उच्चतम न्यायालय उठायेगा और उनके सम्बन्ध में अपना अन्तिम निर्णय देगा। मेरा यह निवेदन है कि यह असम्भव है कि मृत्युदंड विषयक प्रत्येक मामला उच्चतम न्यायालय के सम्मुख उपस्थित किया जाये क्योंकि यदि यह किया गया तो उच्चतम न्यायालय में कम से कम सौ न्यायाधीशों की आवश्यकता होगी। हमारी न्याय प्रणाली अंग्रेजों की न्याय प्रणाली पर आधृत है। 1908 के पूर्व इंग्लैंड में दंड-विषयक मामलों में अपील नहीं की जा सकती थी। 1908 में ही वहां अपील के सम्बन्ध में एक उपबंध रखा गया था। अपील के विरोध में यह तर्क उपस्थित किया गया था कि पंच (जूरी) तथा न्यायाधीश मामलों का निर्णय करते हैं, पंच (जूरी) निर्णय देते हैं और न्यायाधीश उसकी संपुष्टि करते हैं और इसलिये निर्णय में कोई त्रुटि रह जाने की सम्भावना नहीं रहती। भारत में हत्या-विषयक मामलों में न्याय-सहकारी (एसेसर) तथा एक न्यायाधीश होता है। वे इस प्रकार के मामलों के सम्बन्ध में निर्णय करते हैं यह उपबंध भी है कि उच्च न्यायालय मृत्युदंड की संपुष्टि करेगा और उच्च न्यायालय में ही अपील भी की जा सकती है। मेरे विचार से प्रत्येक ऐसे मामले में किसी अन्य उपचार की आवश्यकता नहीं है। जैसा कि मैं कह चुका हूं इस स्थिति में उच्चतम न्यायालय के लिये विभिन्न उच्च न्यायालयों से आये हुये अपील के मामलों का निर्णय करना असम्भव हो जायेगा। इसलिये संविधान में जो उपबंध रखे गये हैं वे न्याय की दृष्टि से पर्याप्त हैं और किसी अन्य उपबंध की आवश्यकता नहीं है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मैं इस अनुच्छेद का विरोध करना चाहता हूं और वह एक वकील के दृष्टिकोण से नहीं बल्कि एक ऐसे व्यक्ति के दृष्टिकोण से जिसको लोगों की व्यवहार सम्बन्धी स्वतंत्रताओं से प्रेम है। मेरे मित्र मि. नजीरुद्दीन अहमद और श्री भार्गव ने 'संविधान का निर्वचन' शब्दों को निकालने के लिये बहुत ही पुष्ट तर्क उपस्थित किया है। श्री अल्लादी ने भी अभी हमें मुकदमेबाजी बढ़ जाने की चेतावनी दी है और वास्तव में उनके तर्क से सहमत न होना कठिन है। यह सभी की इच्छा है कि लोग मुकदमेबाजी में न पड़े रहें। मुझे पूरी आशा है कि वर्तमान न्याय-प्रणाली को तुरन्त ही बदल दिया जायेगा और उसका स्थान ऐसी प्रणाली लेगी जिससे लोगों को थोड़ा सा धन व्यय करने पर, तुरन्त ही न्याय प्राप्त हो जायेगा। मैंने उन उपबंधों को सावधानी से पढ़ा है, जो उच्चतम न्यायालय की शक्तियों के सम्बन्ध में हैं और इस सम्बन्ध में इस सभा में दिये हुये भाषणों को भी ध्यानपूर्वक सुना है। मुझे एक भी उपबंध ऐसा नहीं दिखाई दिया जिससे किसी ऐसे नागरिक को, जिसे मृत्युदंड सुनाया गया हो अथवा जिसकी व्यवहार-स्वतंत्रताओं का अपहरण हुआ हो, यह प्रत्याभूति मिलती है कि उसे उच्चतम न्यायाधिकरण में अर्थात् उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार प्राप्त है। मुझे कई ऐसे मामलों की जानकारी है जिनमें लोगों को मृत्युदंड मिला था। दुर्भाग्य से 1942 में मैं मृत्युदंड पाने वाले अपराधियों के कारागार में छब्बीस महीने तक बन्द रहा और लगभग सैंतीस व्यक्ति मेरे सामने फांसी पर चढ़ाये गये। इमारत के एक हिस्से में मृत्युदंड पाने वाले बन्दियों की आठ कोठरियां थीं और उनमें से एक में मैं बन्द था। इसलिये मुझे मृत्युदंड पाने वाले बन्दियों के साथ रहने, उनसे मिलने और उनसे बातचीत करने का अवसर प्राप्त हुआ। इन सैंतीस लोगों में से सात मुक्त हो गये, दस के दंड कम होकर उन्हें कालेपानी का दंड मिला और बीस को फांसी पर चढ़ा दिया गया। श्रीमान्, मुझे विश्वास है कि जो लोग मुक्त हुये थे उनमें से अधिकांश वास्तव में हत्यारे थे और जिनको कालेपानी का दंड मिला था उनमें से भी अधिकांश हत्यारे थे और जिनको फांसी पर चढ़ाया गया था उनमें से अधिकांश निर्दोष थे। कम से कम सात व्यक्तियों के बारे में मुझे विश्वास था कि वे निर्दोष थे। किन्तु फिर भी उन्हें फांसी पर चढ़ा दिया गया। मैं यह नहीं कहता कि उच्चतम न्यायालय को हमेशा दैवी प्रेरणा से यह ज्ञात हो जायेगा कि सत्य क्या है? इसीलिये मैं यह चाहता हूं कि मृत्युदंड को बिल्कुल समाप्त कर दिया जाये। किन्तु जब तक हम मृत्युदंड को समाप्त नहीं करते हैं, मेरे विचार से मृत्युदंड पाने वालों को उच्च से उच्च न्यायाधिकरण में अपील करने का अधिकार प्राप्त होना चाहिये। यह अधिकार स्वाभाविक रूप से ही प्राप्त होना चाहिये और यह किन्हीं शर्त्तों के अधीन न होना चाहिये। अन्य विषयों के सम्बन्ध में मैं श्री अल्लादी के परामर्श को पूर्णतया स्वीकार करने के लिये तैयार हूं। व्यवहार-वादों के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय के प्रकार्यों को सीमित करने के लिये मैं तैयार हूं किन्तु मैं यह अवश्य चाहता हूं कि जो लोग मृत्युदंड पाने वाले हों उन्हें उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार स्वाभाविक रूप से ही प्राप्त होना चाहिये और जब तक उच्चतम न्यायालय मृत्युदंड की संपुष्टि न करे तब तक कोई व्यक्ति फांसी पर न चढ़ाया जाना चाहिये। एक दिन मेरे विद्वान मित्र बख्शी टेकचन्द ने अन्य प्रसंग में हमसे यह कहा था कि जब वे लाहौर के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश थे तो प्रत्येक वर्ष मृत्युदंड के तीन सौ मामले अपील के लिये उनके पास आते थे। हत्याओं

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

की संख्या को देखते हुए यह प्रकट होता है कि अविभक्त पंजाब में बड़ी अशांति रहती थी किन्तु पूर्वी पंजाब तथा अन्य प्रान्त इतने हिंसात्मक नहीं हैं। मेरे विचार से सारे भारत में हत्या-सम्बन्धी अपीलों के मामले सात या आठ सौ से अधिक न होंगे। मेरी यह धारणा है कि मृत्युदंड पाने वाले लोगों को उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार स्वाभाविक रूप से प्राप्त होना चाहिये और उन्हें कम से कम इसका तो संतोष होना चाहिये कि उनके मामलों पर देश के उच्चतम न्यायाधिकरण में विचार हो चुका है। मैंने यह देखा है कि बहुत गरीब लोग अपील नहीं कर सकते हैं क्योंकि वे वकील को धन नहीं दे सकते हैं। मैं यह देखता हूं कि अनुच्छेद 112 में यह कहा गया है कि उच्चतम न्यायालय किसी निर्णय के सम्बन्ध में अपील करने की विशेष इजाजत दे सकता है किन्तु केवल धनी लोग ही, जो सब कुछ करने में समर्थ हैं, ऐसा कर सकेंगे और साधारण लोग, निर्धन होने के कारण, इस अनुच्छेद से लाभ न उठा सकेंगे। इसलिये उन लोगों को स्मरण करके जो निर्दोष होने पर भी मेरी उपस्थिति में फांसी पर चढ़ा दिये गये, मैं सभा से अनुरोध करता हूं कि इस अनुच्छेद में अथवा वाद में आने वाले किसी अनुच्छेद में यह उपबंध रखा जाये कि मृत्युदंड पाने वाले लोगों को उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार प्राप्त होगा।

***श्री फ्रैंक ऐन्थानी** (मध्य भारत और बरार : जनरल): श्रीमान्, मैं इस वादानुवाद में भाग नहीं लेना चाहता था किन्तु अपने मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव के भाषण को सुनकर मेरी भी इच्छा हुई कि मैं भी कुछ कहूं। मेरे विचार से उनके दृष्टिकोण पर कोई आपत्ति नहीं की जा सकती है और यदि हम इन उपबंधों को यथेष्ट रूप देना चाहते हैं तो हमें उसे स्वीकार करना ही पड़ेगा। मैंने अभी 110 से लेकर 112 तक के अनुच्छेदों के उपबंधों को देखा और मुझे ज्ञात हुआ कि व्यवहार विषयक मामलों में वादी प्रतिवादियों के लिये पर्याप्त सुरक्षा है। मेरी यह धारणा है कि इस सभा के बाहर लोग यह कहेंगे कि ये उपबंध व्यवहार-विषयक मामलों को ध्यान में रख कर बनाये गये हैं और व्यवहार-विषयक मामलों में वकालत करने वाले वकीलों ने बनाये हैं जो मुकदमेबाजी बढ़ाना चाहते हैं। हमने व्यवहार-विषयक मामलों की अपीलों के सम्बन्ध में कोई निर्बन्धन नहीं रखे हैं। अनुच्छेद 111 के अनुसार ऐसे सभी वादो में, जिनमें बीस हजार रुपये की धनराशि अन्तर्ग्रस्त हो, उच्चतम न्यायालय में अपील करने का पूर्ण अधिकार दिया गया है और वह स्वत: प्राप्त हो जाता है। मेरे विचार से इस सीमा को निर्धारित करना एक अनर्गल बात है। यदि हम एक लाख रुपये अथवा दो लाख रुपये की सीमा रखें तो व्यवहार-विषयक मामलों में पड़े हुये लोगों को क्या कष्ट होगा? यह मेरी समझ में नहीं आता कि विधि-मंत्री तथा उनकी विचारधारा के अन्य लोगों की यह धारणा क्यों है कि ऐसे व्यवहार विषयक मामलों में पड़े हुये लोगों के प्रति, जिनमें बीस हजार या इससे अधिक रुपये की धनराशि अन्तर्ग्रस्त हो, इस प्रकार का न्याय होना ही चाहिये जब कि वे यह कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति मृत्युदंड अथवा कालेपानी की सजा पाने वाला हो तो उसका यह अर्थ नहीं है कि स्वतंत्रता अथवा न्याय का इतना उल्लंघन हुआ है कि उसे अपील का अधिकार स्वत: प्राप्त हो जाता है। मेरे मित्र यह कह सकते हैं कि अनुच्छेद 112 के अधीन उच्चतम न्यायालय स्वविवेक से अपराध-विषयक मामलों में अपील करने की इजाजत दे सकता है किन्तु यह

स्वविवेक का प्रश्न है और इस शर्त्त के अधीन है कि उस मामले में कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होने चाहिये। श्रीमान्, मुझे बहुत से अपराध-विषयक तथा हत्या-विषयक मामलों का अनुभव है और मेरे विचार से हम अपराध-विषयक मामलों के सम्बन्ध में, विशेषतया उन मामलों के सम्बन्ध में, जिनमें मृत्युदंड अथवा कालेपानी की सजा दी जाने वाली हो, अधिक प्रत्याभूति नहीं दे सकते। जैसा कि मेरे मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव कह चुके हैं, जिस किसी व्यक्ति को व्यवहार-विषयक मामलों का विशेषतया हत्या-विषयक मामलों का अनुभव है वे अपने अनुभव से यह प्रामाणिक रूप से कह सकते हैं कि स्थिति के मिथ्या निर्वचन के कारण और विधि का अत्यधिक परस्पर-विरोधी निर्वचन होने के कारण बहुत अन्याय हो जाता है। भारत में किसी उच्च न्यायालय में किसी ऐसे मामले में, जिसमें एक व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति को घातक चोट पहुंचाई हो और एक अन्य व्यक्ति ने चोट खाने वाले व्यक्ति को पकड़ा हो, दोनों व्यक्ति मृत्युदंड पा सकते हैं और किसी उच्च न्यायालय में एक व्यक्ति को हत्या के लिये मृत्युदंड दिया जा सकता है और दूसरे व्यक्ति को साधारण चोट पहुंचाने के लिये केवल जुर्माना हो सकता है। न्याय सम्बन्धी निर्णयों में इतना विभेद होने पर भी मेरे मित्र कहते हैं कि भले ही किसी व्यक्ति को मृत्युदंड अथवा कालेपानी की सजा सुनाई गई हो, किन्तु केवल इस कारण उसे अपील करने का अधिकार स्वत: प्राप्त नहीं हो जाता। यह तर्क उपस्थित किया गया है कि यदि हम प्रत्येक ऐसे मामले में अपील करने का अधिकार प्रदान करेंगे जिसमें मृत्युदंड सुनाया गया हो तो हमें बहुत से न्यायाधीशों की आवश्यकता पड़ेगी। श्रीमान्, यह युक्तियुक्त तर्क नहीं है। इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि इस देश में जितने अपराध-विषयक मामले होते हैं उससे दस या पन्द्रह गुना व्यवहार-विषयक मामले होते हैं। किन्तु ऐसे व्यवहार-विषयक मामलों में, जिनमें बीस हजार या इससे अधिक रुपये की धनराशि अन्तर्ग्रस्त हो, अपील करने का पूर्ण अधिकार दिया गया है। सम्पत्ति को मनुष्य-जीवन से अधिक पवित्र समझा गया है। यदि हम यह चाहते हैं कि न्यायाधीशों की संख्या कम हो और उच्चतम न्यायालय में कम मामले जायें तो व्यवहार-विषयक अपीलों के सम्बन्ध में सम्पत्ति के विषय में निर्बन्धन रखा जाये। यदि मोटे पूंजीपतियों को और चोरबाजारियों को तीन लाख या चार लाख से कम के मामलों में अपील का अधिकार नहीं दिया गया तो उन्हें क्या कष्ट हो जायेगा? क्या न्याय की दृष्टि से इतना भी आवश्यक नहीं है कि मृत्युदंड पाने वाले व्यक्ति को उच्चतम न्यायालय में अपील करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त हो, चाहे उसके मामले में कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो या न हो? मेरे विचार से यदि सभा ने कोई भी अन्य निर्णय किया तो उससे न्याय के आधारभूत सिद्धांत का हनन ही होगा। पीछे की जगहों में बैठे हुये मेरे माननीय मित्रों ने कहा है कि संसार के अन्य देशों में मृत्युदंड की आज्ञा हो जाने पर अपील करने का अधिकार स्वत: प्राप्त हो जाने की कोई व्यवस्था नहीं है। क्या अपने मार्ग प्रदर्शन के लिये हमें अन्य देशों के उदाहरण खोजने चाहियें? यदि यह स्वीकार किया जाता है कि हमारे देश में स्थिति वही है जो पंडित ठाकुरदास भार्गव ने बताई है तो अपराध विषयक मामलों में वकालत करने वाला कौन वकील यह प्रमाणित न कर सकेगा कि दंगे के दस मामलों में से नौ मामलों में दो, तीन, चार, पांच या छ: निर्दोष लोग लपेट में आ जाते हैं? दंगे के मामलों में प्राय: निर्दोष व्यक्तियों को हत्या के अपराध के लिये मृत्युदंड भी दिया गया हैं। मैं अपने उन माननीय मित्रों के तर्क को

[श्री फ्रैंक ऐन्थानी]

नहीं समझ पाता हूं जो यह कहते हैं कि चूंकि उच्चतम न्यायालय को अनुच्छेद 112 के अधीन यह शक्ति प्राप्त है कि वह कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होने पर स्वविवेक से मामले को अपने सामने रखवाये, इसलिये उन लोगों को पर्याप्त रक्षण हो जाता है जिनकी स्वतंत्रता का अपहरण हुआ हो। मैं अपने माननीय मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव के इस कथन से सहमत हूं कि इसे उच्चतम न्यायालय के स्वविवेक पर छोड़ देना बहुत ही निम्न कोटि की उपेक्षा है। सम्भावना इसकी है कि हमारे विधि-मंत्री के समान प्रभावशाली लोगों पर इस प्रकार के खंड का कुछ भी प्रभाव न पड़ेगा। यह सम्भव है कि जिन लोगों को मृत्युदंड सुनाया गया हो अथवा जिनकी स्वतंत्रता का अपहरण हुआ उनको यह आश्वासन देने के लिये कि उन्हें उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार प्राप्त है, संसद कुछ भी न करे। श्रीमान्, इस कारण मेरे विचार से यह एक महत्त्वपूर्ण विषय है और इसके सम्बन्ध में विधि-मंत्री से मेरी यह प्रार्थना है कि यदि आवश्यक हो तो इस पर विचार-विमर्श स्थगित किया जाये ताकि बाद को सभा इस पर पूर्ण रूप से पुनर्विचार कर सके।

***डा. पी.के. सेन** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, इन अनुच्छेदों का उद्देश्य स्पष्ट है। अनुच्छेद 110 उन विशेष मामलों के सम्बन्ध में है जिसमें संविधान के निर्वचन का प्रश्न अंतर्ग्रस्त हो। अनुच्देद 111 की यह विशेषता नहीं है और यह व्यवहार-विषयक मामलों के सम्बन्ध में है। इन दो अनुच्छेदों की भावना तथा इनकी शब्दावली के सम्बन्ध में मुझे कुछ भी आपत्ति नहीं है। मैं सभा के सम्मुख केवल अनुच्छेद 112 के सम्बन्ध में अपने विचार नम्रतापूर्वक उपस्थित करना चाहता हूं। मेरे माननीय मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव ने इस सभा के सम्मुख जो दृष्टिकोण उपस्थित किया है उससे मुझे बहुत सहानुभूति है। यद्यपि अनुच्छेद 112 में विशेष इजाजत के लिये कोई उपबंध है किन्तु उससे मृत्युदंड की अपील के प्रश्न पर उतना जोर नहीं पड़ता जितना कि पड़ना चाहिये। मैं नही जानता कि यह व्यवस्था किस प्रकार की जा सकती है और की जानी चाहिये। यह हो सकता है कि संसद को इसकी स्वतंत्रता हो कि वह केवल मृत्युदंड के मामलों में अपील स्वीकार करने के लिये उपबंध बनाये अथवा केवल मृत्युदंड के ही मामलों में नहीं बल्कि अपराध-सम्बन्धी अन्य महत्त्वपूर्ण मामलों में भी अपील स्वीकार करने के लिये उपबंध बनाये। किन्तु इस सम्बन्ध में एक बात के बारे में मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है और वह यह है कि इस विषय में हम अंग्रेजों की प्रथा का अनुसरण न करें। दंड के विषय में तथा दंड-सम्बन्धी विधि के विषय में इंग्लैंड अन्य देशों की अपेक्षा बहुत ही पिछड़ा हुआ तथा कट्टरपंथी देश रहा हैं। हम देखते हैं कि यद्यपि पश्चिम के अधिकांश देशों में और अन्य बड़े-बड़े राज्यों में मृत्युदंड को समाप्त कर दिया गया है किन्तु इंग्लैंड में अभी इसकी चर्चा ही हो रही है और अत्यधिक प्रयत्न होने पर भी लोकमत इसके पक्ष में नहीं हुआ है कि मृत्युदंड पाने वाले अपराधियों को किसी अन्य प्रकार दंडित किया जाना चाहिये अर्थात् उनको किसी काम का न रखना चाहिये अथवा समाज से उनका बहिष्कार कर देना चाहिये ताकि वे समाज-विरोधी कार्य न कर सकें। चाहे और कुछ भी किया जाये किन्तु मृत्युदंड न देना चाहिये। अधिकांश देशों ने इसी विचारधारा को अपनाया है। श्रीमान्, मैं इस सभा में उस विचारधारा को व्यक्त करने नहीं जा रहा हूं बल्कि केवल यह कहना चाहता हूं कि

इंग्लैंड ने इसे बहुत देर करके स्वीकार किया कि बहुत से अपराधों को मृत्युदंड की श्रेणी में न लेना चाहिये। हेनरी अष्टम के समय से ही इस विषय के सम्बन्ध में बहुत संकोच दिखाया गया। उस समय 263 प्रकार के अपराधों के लिये मृत्युदंड दिया जाता था। 1797 में भी 160 प्रकार के अपराधों के लिये मृत्युदंड दिया जाता था। 1883 में कुछ अपराधों को मृत्युदंड की सूची से निकालने की ओर कदम उठाया गया। उदाहरणार्थ, दुकानों से चीजें उठा लेने और चोरी के छोटे-छोटे मामले और इसी प्रकार के अन्य अपराधों को उस सूची से निकाल देने का प्रस्ताव किया गया। इन अपराधों के करने वाले लोगों को मृत्युदंड दिया जाता था। एक सोलह वर्ष के लड़के के उदाहरण का उल्लेख मिलता है जो किसी दुकान की खिड़की से एक खिलौने को उठा लेने के प्रलोभन को न रोक सका और इस अपराध के लिये फांसी पर चढ़ा दिया गया। उस समय के अंग्रेज इतने कट्टरपंथी थे कि उन्होंने यह स्वीकार नहीं किया कि इस प्रकार के मामलों में सुधार के, बहिष्कार के अथवा दंडित करने के किसी अन्य मार्ग का भी अनुसरण किया जा सकता था। 1833 में जब मृत्युदंड की सूची में से इन अपराधों में से कुछ को निकालने का प्रश्न फिर उठा तो लार्ड एडिनवरा ने लार्ड सभा को यह चेतावनी दी थी: ''आदरणीय महोदयों, आपको इस प्रकार के विधेयक के लिये सोच समझ कर सहमत होना चाहिये क्योंकि इससे निजी सम्पत्ति हमेशा के लिये खतरे में पड़ जायेगी।'' मैं इन उदाहरणों को यह दिखाने के लिये दे रहा हूं कि दंड-विषयक मामलों में उच्च न्यायालयों के निर्णयों की अपील को सुनने के लिये प्रिवी कौंसिल अभी तक क्यों बड़ी कठिनाई से तैयार होती रही है। कुछ ही मामलों में, जिनमें उसने देखा कि 'प्राकृतिक न्याय' का हनन हुआ है, वह अपील सुनने के लिये तैयार हुई है। 'प्राकृतिक न्याय' शब्दों की व्याख्या अथवा परिभाषा करना बहुत कठिन है। मेरा यह निवेदन है कि भारत की नवीन स्थिति में हमें इंग्लैंड के उदाहरण का अनुसरण न करना चाहिये। इसके विपरीत मृत्युदंड विषयक मामलों को उन मामलों की सूची में रखने के लिये, जिनके सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है, आज जो अनुरोध किया गया है उस पर हमें सहानुभूतिपर्वूक विचार करना चाहिये। मैं इस समय इस सम्बन्ध में कोई सुझाव नहीं दे रहा हूं कि इन मामलों के विषय में किस प्रकार के उपबंध रखे जायें। इनको संविधान में स्थान देने के पूर्व इन पर सावधानी से विचार-विमर्श करने की आवश्यकता होगी और सम्भवत: संसद को विस्तृत प्रक्रिया के सम्बन्ध में उपबंध बनाने होंगे। किन्तु मैं यह अवश्य चाहता हूं कि संविधान में कोई उपबंध ऐसा रखना चाहिये जिसके आधार पर संसद इस प्रश्न को यथोचित महत्त्व दे सकेगी।

धनराशि के सम्बन्ध में भी कुछ कहा गया है। भारत जैसे विशाल देश में बहुत से न्यायाधीशों की आवश्यकता होगी और यदि इस प्रकार की अपीलों की इजाजत दी गई...

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): उच्च न्यायालयों के निर्णयों की अपील के इस प्रकार के मामलों के आंकड़े हमें प्राप्त नहीं हैं। हम यह नहीं कह सकते कि यह संख्या कहीं बहुत बड़ी तो नहीं है।

***श्री फ्रैंक ऐन्थानी:** ऐसे मामलों की संख्या व्यवहार-विषयक मामलों की संख्या से बहुत ही कम होगी।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्रः** हमें हत्या के उन मामलों के आंकड़े प्राप्त नहीं हैं जो उच्च न्यायालयों के सामने उपस्थित किये जाते हैं।

***डा. पी.के. सेनः** उन्हें आसानी से प्राप्त किया जा सकता है और इस सम्बन्ध में कोई कठिनाई न होगी। मेरा निवेदन यह है कि आधुनिक काल में मनुष्य जीवन की पवित्रता को अधिकाधिक स्वीकार किया जाने लगा है। यह अप्रासंगिक है कि अतीत काल में मनुष्य जीवन क्यों इस प्रकार पवित्र नहीं समझा जाता था। वास्तव में अतीत काल में संसार के देश युद्धग्रस्त ही रहे और युद्धकाल में मनुष्य-जीवन की किसे चिंता रहती है? किन्तु अब यह स्थिति नहीं है और पश्चिम में तथा पूर्व में अर्थात् दोनों गोलार्धों में प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को बहुत पवित्र समझा जाता है। क्या हम भारत के नवीन संविधान में इसे स्वीकार करने नहीं जा रहे हैं? वास्तव में मूलाधिकारों के अध्याय में हमने इसे कई रूप में स्वीकार किया है। किन्तु जब उच्चतम न्यायायल में मृत्युदंड की अपील करने का प्रश्न उठता है तो हम कहते हैं, ''हमारे पास धन नहीं है और हम इतने न्यायाधीशों को नहीं रख सकते।'' क्या हमारा पथप्रदर्शन ऐहिक बातों से होना चाहिये? क्या हमें यह अनुभव न करना चाहिये कि इस विषय में एक नैतिक सिद्धांत सन्निहित है और उसी से हमारा पथप्रदर्शन होना चाहिये? क्या हमें इस नैतिक सिद्धांत को स्वीकार न करना चाहिये और उसे कार्यान्वित करने के लिये यथोचित साधन प्राप्त न करने चाहिये?

श्रीमान्, मैं पहले ही कह चुका हूं कि मैं न कोई संशोधन उपस्थित कर रहा हूं और न किसी संशोधन का समर्थन कर रहा हूं। इस विषय पर जो सामान्य वादानुवाद हो रहा है उसी के सिलसिले में मैं अपने विचार व्यक्त कर रहा हूं और मैं यह बताना चाहता हूं कि इन विचारों के प्रति मेरी पूरी निष्ठा है। इसलिये मैं सभा से बिना किसी संकोच के यह कह सकता हूं कि इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाये और इसे एक साधारण विषय समझ कर इस पर ऊपरी तौर से विचार न किया जाये। इस समय मैं यह प्रश्न नहीं उठा रहा हूं कि मृत्युदंड ठीक है या नहीं। इस प्रश्न पर सावधानी से विचार करने की आवश्यकता है। इस प्रश्न पर हम इस समय विचार कर भी नहीं सकते। परन्तु मेरा यह निवेदन है कि हमें संविधान में यथोचित रूप से यह उपबंध रखना चाहिये कि मृत्युदंड के सभी मामलों के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकेगी।

श्रीमान्, अपने विचारों को व्यक्त करने के लिये आपने मुझे जो अवसर दिया उसके लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूं।

***डा. पी.एस. देशमुखः** श्रीमान्, मैं इस वादानुवाद में भाग नहीं लेना चाहता था किन्तु मैंने यह देखा कि इस प्रश्न के एक अंग पर जोर नहीं दिया गया है और इसीलिये मैं भी इसमें सम्मिलित हो रहा हूं।

मेरे माननीय मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव ने जो तर्क उपस्थित किया था उसका मेरे माननीय मित्र मि. फ्रैंक ऐन्थानी और डा. पी.के. सेन ने बड़ी योग्यता के साथ समर्थन किया है। मैं भी उसका सच्चे हृदय से समर्थन करता हूं। मैं केवल अपराध-विषयक मामलों

के दृष्टिकोण से ही नहीं बल्कि भारत में दैहिक स्वातंत्र्य के दृष्टिकोण से भी उसका समर्थन करता हूं। निःसंदेह एक उपबंध इस प्रकार है कि....।

***श्री बी. दासः** यह वकालत की वृत्ति के लिये लाभप्रद सिद्ध होता है।

***डा. पी.एस. देशमुखः** यदि मेरे माननीय मित्र केवल वकालत की वृत्ति को ही लाभ होने के कारण चिंतित हैं और यही उनकी एक शिकायत है, तो यह निर्धारित किया जा सकता है कि कुछ प्रकार के मामलों में वकीलों को उपस्थित न होने दिया जायेगा। यदि उनका यह विचार है कि हम इस विषय में केवल इस कारण दिलचस्पी ले रहे हैं और इसका समर्थन केवल इस कारण कर रहे हैं कि वकीलों की आय बढ़ जायेगी तो मैं अपनी ओर से इसके लिये तैयार हूं कि इनमें कुछ मामलों में वकीलों को उसी प्रकार उपस्थित न होने दिया जाये जैसे कि ग्राम पंचायत के न्यायालयों में उन्हें उपस्थित नहीं होने दिया जाता।

हम इस समय यह देख रहे हैं कि भारत के कई स्थानों में दैहिक स्वतंत्रताओं में बहुत हस्तक्षेप किया जा रहा है। उदाहरणार्थ यदि हम यह देखें कि प्रान्तीय सरकारें कई स्थानों में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 को प्रयोग में लाकर किस प्रकार शासन कर रही हैं और उस धारा को कितने समय के लिये प्रयोग में रहने दिया जाता है तो हम चकित हो जायेंगे। यदि हम इस विषय के आंकड़ों की अंग्रेजी के काल के आंकड़ों से तुलना करें तो जो परिणाम निकलेगा उससे भी हम विस्मित ही होंगे। कम से कम जहां तक बम्बई के प्रान्त का सम्बन्ध है, मेरे पास इस सम्बन्ध में बहुत सी शिकायतें आई हैं कि बम्बई की सरकार बहुत से लोगों को एक जिले से निकाल कर दूसरे जिले में भेज देती है। यह उन लोगों के मार्ग में बाधा डालने का बहुत अच्छा उपाय है जो अन्यथा बन्दी-प्रत्यक्षीकरण के लिये आवेदन-पत्र देते। इसलिये यह कोई ऐसी बात नहीं है जो समझ में न आ सके कि भले ही संविधान के उपबंधों का अतिक्रमण न हुआ हो किन्तु लोगों की उन व्यवहार-सम्बन्धी स्वतंत्रताओं में हस्तक्षेप हो सकता है जो मूलाधिकारों के अधीन नहीं आती अथवा जिनके सम्बन्ध में मूलाधिकारों का सहारा नहीं लिया जा सकता। भारतीय राज्यों के भविष्य के विधि-मंत्रियों की बुद्धि प्रखर होगी ही, इसलिये मेरे विचार से लोगों की स्वतंत्रताओं की रक्षा के लिये यह उपबंध बहुत आवश्यक है कि ऐसे मामलों में भी उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है जिनमें संविधान के निर्वचन का प्रश्न अथवा मूलाधिकारों के अतिक्रमण का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त न हो। इस दृष्टि से भी इस सुझाव पर विचार किया जाना चाहिये कि जिस प्रकार व्यवहार-विषयक मामलों में उच्चतम न्यायालय में अपील करने की सुविधा है उसी प्रकार अपराध-विषयक मामलों में भी अपील करने की सुविधा होनी चाहिये। मुझे आशा है कि यह दृष्टिकोण स्वीकार किया जायेगा और तदनुसार एक उपबंध रखा जायेगा।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्रः** अध्यक्ष महोदय, संविधान के इस भाग के फलस्वरूप कई महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठते हैं जिन पर सभा को सावधानी से विचार करना चाहिये।

अनुच्छेद 110 और 111 में हमने व्यवहार-विषयक मामलों में अपीलों के सम्बन्ध में उपबंध रखे हैं। प्रश्न यह है कि हम अपराध-विषयक मामलों में सम्बन्ध में क्या करने

[पं. लक्ष्मीकांत मैत्र]

जा रहे हैं। एक वकील होने के नाते मैं यह समझता हूं कि यह मेरा कर्त्तव्य है कि मैं सभा को यह बताऊं कि अधिकांश वकीलों का भी यही मत है कि यद्यपि व्यवहार-विषयक मामलों में हमने अपील का अधिकार दिया है किन्तु अपराध-विषयक मामलों में अभियुक्त को इस प्रकार का कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। प्रश्न यह है कि क्या इस प्रकार का अधिकार प्रदान करने के लिये हमें संविधान में कोई उपबंध रखना चाहिये? एक संशोधन द्वारा यह सुझाव रखा गया है कि एक अनुच्छेद अर्थात् अनुच्छेद 112 (ख) प्रविष्ट किया जाये जिसका आशय यह हो कि संसद को इस विषय के सम्बन्ध में विधि बनाने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये और इस विधि के अधीन निर्धारित शर्तों और परिसीमाओं के अधीन उच्चतम न्यायालय को अपने अपराध-विषयक क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुये भारत के राज्य क्षेत्र में किसी उच्च न्यायालय के दिये हुये दंड या निर्णय की अपील सुनने का अधिकार होगा। श्रीमान्, मेरी यह धारणा है कि इस अनुच्छेद से यह आधारभूत प्रश्न उठता है कि क्या हम सम्पत्ति के प्रश्न को मनुष्य-जीवन के प्रश्न से अधिक महत्त्व नहीं दे रहे हैं? यदि आप सम्पत्ति के विषय में लोगों को अपील करने का अधिकार अपने संविधान द्वारा देने जा रहे हैं तो क्या मृत्युदंड के मामलों में आप उन्हें इस अधिकार से वंचित रखना चाहते हैं? इस प्रकार के मामले दो प्रकार उठ खड़े होते हैं। या तो न्यायाधीश पंचों (जूरी) से अथवा न्याय सहकारियों (एसेजरों) से सहमत होकर मृत्युदंड का निर्णय करता है अथवा कोई व्यक्ति सत्र-न्यायालय द्वारा तो मुक्त कर दिया जाता किन्तु उसकी मुक्ति के विरुद्ध सरकार अपील करती है और अन्त में उच्च न्यायालय अधीन न्यायालय के निर्णय को उलट देता है और उसे मृत्युदंड देने का निर्णय करता है।

दूसरी दशा में, अर्थात् मुक्त होने पर फिर सिद्धदोष ठहराये जाने पर अभियुक्त उस निर्णय की अपील कहां करेगा? इस सम्बन्ध में संविधान में कोई उपबंध नहीं है। सम्भवत: बहुत ही विशेष स्थिति में विशेष इजाजत लेकर ही अपील की जा सकती है किन्तु इसका अधिकार स्वत: प्राप्त नहीं है। सम्भवत: यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि यदि देश में इसके पक्ष में प्रबल लोकमत हो तो संसद उसकी ओर ध्यान देगी और आवश्यक विधि का निर्माण करेगी। जो लोग इस विचारधारा के हैं उनसे मैं यह सीधा-सादा प्रश्न पूछना चाहता हूं कि इस बीच क्या होगा? हो सकता है कि पांच या छ: वर्ष तक और दस वर्ष तक भी संसद इस ओर कोई कदम न उठाये। हम कह नहीं सकते कि भविष्य में संसद में किस प्रकार के सदस्य आयेंगे। इसलिये मैं यह चाहता हूं कि अधिकार का संविधान में ही उल्लेख हो जाना चाहिये। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि इस समय अनुच्छेद 112 (ख) को स्थगित रखा जाये। हमें चाहिये कि हम अपने मित्रों से इस दृष्टिकोण को स्वीकार कराने के लिये एक बार फिर प्रयत्न करें कि मनुष्य जीवन की पवित्रता को स्वीकार करना ही चाहिये। यह तर्क उपस्थित किया गया है और कार्यपालिका की ओर से यह तर्क हमेशा ही उपस्थित किया जायेगा कि यदि मृत्युदंड की अपील करने का लोगों को अधिकार दिया गया और साधारण रूप से ही इस प्रकार की अपीलें की जायें, तो मृत्युदंड के मामलों का निर्णय करने के लिये हमें बहुत से न्यायाधीशों को नियुक्त करना पड़ेगा। मैं वास्तविक स्थिति से परिचित नहीं हूं और न मेरे पास तत्सम्बन्धी आंकड़े ही हैं और न मेरे विचार से मसौदा-समिति को ही ये-आंकड़े उपलब्ध हैं, जिनके आधार

पर वह यह बता सकती कि प्रत्येक प्रान्त में उच्च न्यायालयों के सामने कितने ऐसे मामले आये जिनमें मृत्युदंड का निर्णय किया गया। इस सम्बन्ध में आंकड़े प्राप्त नहीं हैं। हमें केवल अस्पष्ट रूप से यह बताया गया है कि भारत के उच्च न्यायालयों के सामने इतने मामले आयेंगे कि बहुत से न्यायाधीशों को नियुक्त करने की आवश्यकता होगी। मैं यह भी माने लेता हूं कि यह तर्क ठीक है और काम बहुत बढ़ जायेगा, किन्तु साथ ही मैं यह भी कहूंगा कि यह ठीक ही है कि वह बढ़े क्योंकि इन मामलों में बहुत लोग संकटग्रस्त रहेंगे। श्रीमान्, हमने अभी तक अंग्रेजों के अपराध विषयक विधि-सम्बन्धी न्यायदर्शन के सिद्धांतों का ही अनुसरण किया है। हम उन्हीं की भावना को स्वीकार करते आये हैं और उनसे हमने यह शिक्षा ग्रहण की है कि भले ही एक दर्जन बदमाश मुक्त हो जायें किन्तु एक भी निर्दोष व्यक्ति का बलिदान न होना चाहिये।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, 'बदमाश' शब्द संसदोचित नहीं है।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र:** मेरे मित्र को यह ज्ञात होना चाहिये कि इस शब्दमात्र के लिये यह नहीं कहा जा सकता है कि इस संसदोचित नहीं है। जब यह किसी सदस्य के लिये प्रयोग किया जाये तभी यह कहा जा सकता है कि यह संसदोचित नहीं है।

संदेह के लाभ के सम्बन्ध में जो विधि है वह इसी पर आधृत है। जब स्थिति के सम्बन्ध में दोनों तरह की बातें समान रूप से कही जाती हैं और अभियुक्त के पक्ष में और विपक्ष में भी समान रूप से तर्क उपस्थित किया जा सकता है तो उसे इस सन्देह से लाभ उठाने दिया जाता है। जब न्याय की तुला बहुत कुछ संतुलित हो तो उसे अभियुक्त के पक्ष में ही झुकना चाहिये और न्यायाधीश को एक पलड़े में दया के कुछ कण डाल कर उसका पासन बढ़ा देना चाहिये। अपराध सम्बन्धी न्यायदर्शन का यही आधारभूत सिद्धांत रहा है और इस देश में यह न्यायदर्शन एक सौ वर्ष तक प्रवर्त्तन में रहा है। हम जानते हैं कि अभियुक्तों को मृत्यु-दंडों की अपील का अधिकार न देकर उनके प्रति अन्याय करके कितनी हत्यायें की जाती हैं। क्या यह कोई ऐसा विषय है जिस पर केवल इस कारण ऊपरी तौर पर विचार करके संतुष्ट हो जाना चाहिये कि कुछ अधिक न्यायाधीशों को नियुक्त करने की आवश्कयता पड़ेगी। हमने इस संविधान में सभी प्रकार के विषयों के लिये उपबंध रखे हैं क्या इस महत्त्वपूर्ण विषय के सम्बन्ध में हम अपने उत्तरदायित्व को नहीं समझेंगे? क्या अधिक न्यायाधीयाों की नियुक्ति की सम्भावना से ही डर कर संविधान निर्माता अपने उत्तरदायित्व को पूरा न करेंगे? मेरे विचार से उन्हें इसकी अधिक चिंता न करनी चाहिये। मैं उनसे आदरपूर्वक निवेदन करना चाहता हूं और अपने माननीय मित्र डा. अम्बेडकर के सामने यह सुझाव रखना चाहता हूं कि इस विषय के सम्बन्ध में एक दो दिन तक निर्णय न किया जाये हमें फिर समवेत होकर इस पर अन्तिम रूप से विचार करना चाहिये कि हम उन लोगों के लिये कुछ कर सकते हैं या नहीं जो मृत्युदंड पाने वाले हों और जिनकी अन्त तक भी कोई सुनवाई न होगी। यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण विषय है और मेरा यह निश्चित मत है कि संविधान में ही अपील करने के अधिकार का समावेश होना चाहिये और हमें इस प्रश्न को संसद पर छोड़ना चाहिये। मैं इस विचार से पूर्णतया सहमत हूं विशेषतया इसलिये कि अधिकांश वकीलों का भी

[पं. लक्ष्मीकांत मैत्र]

यही मत है मुझे अभी तक अपराध-विषयक मामलों में वकालत करने वाला कोई भी ऐसा वकील नहीं मिला जिसकी यह धारणा हो कि इस विषय में राज्य की विधि दोषपूर्ण है, क्योंकि राज्य सम्पत्ति को न कि मनुष्य जीवन को अधिक महत्त्व देता है। मेरे विचार से इस तर्क की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। मैं सभा से अनुरोध करता हूं कि इस विषय पर विचार किया जाये।

***श्री के.एम. मुन्शी** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरे माननीय मित्र मि. ऐन्थानी ने यह कहा है कि यह अनुच्छेद उन लोगों को लाभ पहुंचाने के लिये उपस्थित किया गया है जो व्यवहार विषयक मामलों में वकालत करते हैं। मुझ पर इस कारण दिलचस्पी रखने का दोष नहीं लगाया जा सकता क्योंकि व्यवहार-विषयक तथा अपराध-विषयक दोनों प्रकार के मामलों में पड़े हुए लोग मेरे पास समान रूप से आते रहे हैं। हमें इस प्रश्न पर केवल सैद्धांतिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि व्यावहारिक दृष्टि से भी विचार करना है। यदि सभा कृपा करके अनुच्छेद 112 की ओर ध्यान दे जिसके अनुसार विशेष इजाजत से उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है तो उसे ज्ञात होगा कि अपराध-विषयक मामलों में अन्याय होने पर प्रिवी कौंसिल को जो क्षेत्राधिकार प्राप्त है वह जैसे का तैसा रहने दिया गया है। इस प्रकार इस सम्बन्ध में सुनवाई हो सकती है।

अब प्रश्न यह है कि क्या अपराध-विषयक मामलों की अपील होनी चाहिये और यदि होनी चाहिये तो किन शर्तों के अधीन। इस सम्बन्ध में मसौदा-समिति की ओर से एक संशोधन है जिसे मेरे मित्र डा. अम्बेडकर उपस्थित करने वाले हैं। वह संशोधन संख्या 154 है और एक नवीन अनुच्छेद अर्थात् अनुच्छेद 112 (ख) को प्रविष्ट करने के सम्बन्ध में है। वह इस प्रकार है:

> ''संसद, विधि द्वारा, ऐसी शर्तों और परिसीमाओं के अधीन जो ऐसी विधि से उल्लिखित की जायें, उच्चतम न्यायालय को भारत राज्य-क्षेत्र के किसी उच्चतम न्यायालय के दंड-कार्यवाही में दिये गये किसी निर्णय अथवा दंडादेश की अपील लेने और सुनने की शक्ति दे सकेगी।''

इस खंड के सम्बन्ध में एक संशोधन और उपस्थित किया जाने वाला है और उसका आशय यह है कि दंड-विषयक मामलों में दिये हुये अन्तिम आदेशों की भी अपील की जा सकती है। इस प्रकार यह संशोधन अधिक विस्तृत हो जायेगा। इसलिये प्रश्न यह है कि क्या हमें इस प्रकार का एक उपबंध संविधान में ही प्रविष्ट कर देना चाहिये अथवा यह संसद पर छोड़ देना चाहिये कि वह इस सम्बन्ध में विधि बनाये और उसमें इस विषय के सभी अंगों का समावेश करे। दंड-विषयक मामलों में उच्चतम-न्यायालय में अपील करने का अधिकार प्रदान करने का अर्थ यह है कि उच्चतम न्यायालय में कम से कम एक सौ न्यायाधीश नियुक्त करने होंगे। यह अधिकार मृत्युदंड के मामलों के सम्बन्ध में ही क्यों न हो किन्तु फिर भी बहुत से न्यायाधीशों को नियुक्त करना होगा।

पं. लक्ष्मीकांत मैत्रः क्या आपके पास आंकड़े हैं।

***श्री के.एम. मुन्शीः** जी हां, हमारे पास हैं। एक ही प्रान्त में कम से कम सौ या डेढ़ सौ ऐसे मामले होंगे और देश में लगभग पन्द्रह प्रान्त होंगे। इसका अर्थ यह है कि मृत्युदंड के मामलों के सम्बन्ध में प्रत्येक वर्ष एक हजार से कम अपीलें न होंगी। इसके अतिरिक्त यह प्रश्न भी उठता है कि क्या ये अपीलें प्राथमिक अपीलें होंगी या किसी विधि-प्रश्न के सम्बन्ध में होंगी। अथवा क्या वे मृत्युदंड के सम्बन्ध में होंगी अथवा किसी उत्पीड़न के सम्बन्ध में। इस प्रश्न पर भी विचार करने की आवश्यकता है कि क्या ऐसे मामलों के सम्बन्ध में भी अपील की जा सकती है जिनमें मुक्ति के विरुद्ध सरकार के अपील करने पर उच्च न्यायालय ने दंडादेश दिया हो। इन मामलों पर पूर्ण रूप से विचार करने की आवश्यकता है। यही नहीं, हमें इस पर भी विचार करना है कि किन शर्तों के अधीन इस प्रकार की अपील करने की इजाजत देनी चाहिये। इन सब बातों के लिये बहुत सोच-विचार करने के पश्चात् विधि के उपबंध बनाने की आवश्यकता है और संसद ही इस प्रकार की विधि बना सकती है। जहां तक मैं समझ पाया हूं, कोई भी सदस्य दंड-विषयक यथोचित मामलों में अपील करने की इजाजत देने के विरुद्ध नहीं है। किन्तु यह आवश्यक है कि कुछ निर्बन्धनों और शर्तों के अधीन अपील सुनी जानी चाहिये और तद्विषयक उपबंध संविधान में नहीं बल्कि किसी अधिनियम में ही समाविष्ट किये जा सकते हैं।

मैं इस दोष की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं। केवल अन्याय के सम्बन्ध में ही, अर्थात् केवल साक्ष्य अथवा प्रक्रिया के सम्बन्ध में ही, प्रिवी कौंसिल विशेष इजाजत देती है। अनुच्छेद 112 में इस क्षेत्राधिकार का समावेश है। किन्तु अपराध-विषयक मामलों में किसी विधि-प्रश्न के सम्बन्ध में अपील करने का अधिकार नहीं दिया गया है। परन्तु संसद इस विषय पर अवश्य ही विचार करेगी। यदि व्यवहार विषयक मामलों में कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होने पर अथवा किसी मामले को अपील के लायक समझने पर अपील की जा सकती है तो अपराध-विषयक मामलों में इसी आधार पर अपील क्यों नहीं की जा सकती? मेरे विचार से बिना किन्हीं परिसीमाओं अथवा निर्बन्धनों के उच्चतम न्यायालय पर अपराध-विषयक मामलों में अपील सुनने का दायित्व रखने के स्थान पर अच्छा यह होगा कि ये सब विषय संसद के विचारार्थ छोड़ दिये जायें।

मेरा यह भी निवेदन है कि यह अनुच्छेद 110 और 111 के अधीन नहीं आता और इसलिये यह समय इस पर विचार-विमर्श करने का नहीं है। इस पर तो उस समय विचार-विमर्श होना चाहिये जब हम अनुच्छेद 112 (ख) सम्बन्धी संशोधन को उठायेंगे। अनुच्छेद 110 में केवल सांविधानिक विषयों का और अनुच्छेद 111 में केवल व्यवहार-सम्बन्धी विषयों का उल्लेख है। जब हम अनुच्छेद 112 को उठायेंगे तभी इस प्रश्न पर भी विचार किया जा सकता है कि उस अनुच्छेद में कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता है अथवा उसे उसी रूप में स्वीकार कर लेना चाहिये जिस रूप में मसौदा समिति ने उसे उपस्थित किया है। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि इस विषय पर विचार करने में जल्दी न दिखानी चाहिये। यही मेरा निवेदन है।

***श्री जसपतराय कपूर:** अध्यक्ष महोदय, मैं पहले बोलने वाले कई वक्ता महोदयों से सहमत हूं जिन्होंने यह विचार प्रकट किया है कि उच्चतम-न्यायालय को दंड-विषयक मामलों में अपील सुनने का अधिकार होना चाहिये। इस सभा के कई माननीय सदस्यों ने इस मत के समर्थन में बहुत ही सशक्त समाधानकारी तथा अकाट्य तर्क उपस्थित किया है। उससे प्रत्येक व्यक्ति के संदेहों का समाधान हो जाना चाहिये। यह बात दूसरी है कि कोई व्यक्ति समाधान का इच्छुक ही न हो। इसलिये, श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि अनुच्छेद 110, 111 और 112 को यथोचित रूप से संशोधित करके उसमें वे सुझाव समाविष्ट कर देने चाहिये जो इस सभा के कई ऐसे सदस्यों ने दिये हैं जो ख्यातनामा वकील हैं।

इस मत के विरोधियों का मुख्य तर्क यह है कि इससे उच्चतम न्यायालय का कार्य बहुत बढ़ जायेगा और इस प्रकार के मामलों पर विचार करने के लिये बहुत से न्यायाधीशों की आवश्यकता होगी। मैं कह नहीं सकता कि हमारे पास ठीक या बहुत कुछ ठीक आंकड़े हैं या नहीं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि अपील के अधिकार को मृत्युदंड के मामलों तक ही सीमित करने पर भी काम बहुत बढ़ जायेगा। यदि इस मत के विरोधियों के इस तर्क को सबल भी कहा जाये कि कार्य बहुत बढ़ जायेगा तो मेरा यह निवेदन है कि इसे कम से कम सीमित रूप से स्वीकार किया जाये। मेरा यह निवेदन है कि यह अधिकार केवल मृत्युदंड के मामलों तक ही सीमित रखा जाये; यह कहा जा सकता है कि फिर भी मामलों की संख्या बहुत अधिक होगी। मेरे माननीय मित्र मि. ऐन्थानी ने एक बहुत अच्छा सुझाव उपस्थित किया है और वह यह है कि यदि आपको इसका भय है कि काम बहुत बढ़ जायेगा तो व्यवहार-विषयक अपीलों की संख्या को कम करने का कोई उपाय ढूंढ निकालना चाहिये। यदि हम बहुत से न्यायाधीशों को नहीं रख सकते हैं तो कोई कारण नहीं है कि हम अपील के लायक व्यवहार-विषयक मामलों में अन्तर्ग्रस्त धनराशि को सीमित न कर दें। हमें उसे बढ़ा कर 50,000 रु. अथवा एक लाख रुपया कर देना चाहिये। हम आज कल मुद्रा स्फीति के बारे में बहुत कुछ सुनते हैं और यह भी देखते हैं कि मुद्रा का मूल्य गिर गया है। इसके लिये कोई कारण नहीं है कि हम अपील के लायक व्यवहार विषयक मामलों में अन्तर्ग्रस्त धनराशि को बढ़ा कर उसे पचास हजार रुपया अथवा एक लाख रुपया न करें। इसमें कोई सन्देह नहीं कि किसी व्यक्ति के स्वातन्त्र्य अथवा उसके जीवन का मूल्य 20,000 रु. अथवा 50,000 रु. अथवा एक लाख रुपये से कहीं अधिक होता है। वास्तव में किसी व्यक्ति का जीवन धनराशि के रूप में नहीं आंका जा सकता।

इसके अतिरिक्त इसमें एक बहुत आधारभूत प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है और वह यह है। क्या किसी अपराध के सम्बन्ध में सिद्धदोष व्यक्ति को कम से कम एक बार अपील करने का अधिकार प्राप्त होना चाहिये या नही? मैं दो या तीन बार अपील करने के अधिकार की चर्चा नहीं कर रहा हूं यद्यपि हमने व्यवहार-विषयक मामलों के सम्बन्ध में यह व्यवस्था की है। प्रश्न यह है कि क्या किसी सिद्धदोष व्यक्ति को एक बार अपील करने का अधिकार प्राप्त होना चाहिये या नहीं। श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि यह एक मूलाधिकार है और इसके सम्बन्ध में संविधान में एक उपबंध होना चाहिये और इसका निर्णय संसद

पर न छोड़ देना चाहिये। हम जानते हैं कि कई मामलो में अभियुक्त अधीन-न्यायालयों द्वारा मुक्त कर दिया जाता है और ऐसे कुछ मामलों के सम्बन्ध में उच्च न्यायालय में अपील की जाती है। स्थानीय सरकार या तो मुक्ति-सम्बन्धी आदेश के विरुद्ध अपील करती है या उस आदेश के विरुद्ध अपील करती है जिससे दंड का न्यूनन हुआ हो। विचारणीय प्रश्न यह है कि जब इस प्रकार के मामलों के सम्बन्ध में उच्च न्यायालय में अपील की जाये और वह प्रथम बार मुक्त व्यक्ति को दोषसिद्ध ठहराये और अधीन-न्यायालय के मुक्ति-आदेश का खंडन कर दे तथा उस व्यक्ति को मृत्युदंड प्रदान करें तो प्रश्न यह उठता है कि ऐसे व्यक्ति को, जिसे प्रथम बार मृत्युदंड सुनाया गया हो, अपील करने का अधिकार प्राप्त होना चाहिये या नहीं? क्या उच्च न्यायालय के मृत्युदंड के आदेश के विरुद्ध उसकी एक बार भी सुनवाई न होनी चाहिये? यह एक आधारभूत प्रश्न है और मेरा यह निवेदन है कि यदि आपको हमारा मत पूर्णतया स्वीकार न भी हो तो आपको कम से कम इस आशय का एक उपबंध तो रखना ही चाहिये कि जिन मामलों में उच्च न्यायालय ने अधीन-न्यायालय के मुक्ति-आदेश के विरुद्ध अपील होने पर प्रथम बार मृत्युदंड प्रदान किया हो उनमें उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकेगी। मेरा यही निवेदन है। मेरे विचार से कम से कम इसका तो संविधान में उल्लेख होना चाहिये।

श्रीमान्, मुझे और अधिक कुछ नहीं कहना है और वह इसलिये कि इतने प्रख्यात वकीलों ने, जो इस विषय में अधिकृत रूप से बोल सकते हैं और जो तीस चालीस साल से अपराध-विषयक मामलों में वकालत करते आये हैं, एकमत कर यह अनुरोध किया है कि संविधान में इस प्रकार का उपबंध रखा जाना चाहिये। जब इतने विशेषज्ञों की यह धारणा है तो मेरी समझ में नहीं आता कि माननीय डा. अम्बेडकर अपनी बात पर इतने अड़े हुये क्यों हैं और सीमित परिवर्तन करने के लिये भी क्यों तैयार नहीं हैं? श्रीमान्, उनका दृष्टिकोण हमेशा तर्कपूर्ण रहा है और वे हमेशा महत्त्वपूर्ण बातों को समाविष्ट करने का प्रयास करते रहे हैं। इसीलिये मुझे आश्चर्य है कि वे इस अवसर पर इतने अड़े हुये क्यों हैं? मुझे आशा है कि वे यह प्रमाणित नहीं करना चाहते हैं कि कुछ अवसरों पर वे अपने दृष्टिकोण का स्वयं खंडन कर सकते हैं। श्रीमान्, मुझे आशा है कि वे इस दृष्टिकोण पर विचार करेंगे। मेरा तो यह सुझाव है कि वे इस सभा के ऐसे सदस्यों से जो प्रख्यात वकील हैं विचार-विमर्श करें और एक ऐसा उपबंध बनायें जो सभी को मान्य हो।

***डा. बक्शी टेकचन्द:** इस लम्बे वादानुवाद को देखते हुये मैं सभा के विचारार्थ कुछ ही बातें उपस्थित करना चाहता हूं। मैं आदरपूर्वक यह निवेदन करना चाहता हूं कि इस प्रश्न के तीन अंग हैं और उन्हें स्पष्ट रूप से पृथक रखना चाहिये था तथा उन पर यथोचित समय पर अलग-अलग विचार होना चाहिये था।

अनुच्छेद 110 में, जिसके सम्बन्ध में मि. नजीरुद्दीन अहमद ने संशोधन उपस्थित किया है, उन अनेक विषयों का समावेश नहीं है जिन पर पहले बोलने वाले वक्ताओं ने अपने विचार प्रकट किये हैं। वह अनुच्छेद भारत सरकार के अधिनियम की धारा 205 के आशय की पूर्ति करता है जो उन मामलों की अपीलों के सम्बन्ध में है, जिनमें संविधान के

[डा. बक्शी टेकचन्द]

निर्वचन के प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हों। ऐसे मामलों में अपील का पूर्ण अधिकार दिया गया है, चाहे वे मामले व्यवहार-विषयक हों या अपराध-विषयक अथवा किसी अन्य कार्यवाही के सम्बन्ध में उठे हों और चाहे उनका विषय कुछ भी हो। यह एक बहुमूल्य अधिकार है और इसका संविधान में समावेश होना चाहिये किन्तु साथ ही यह शर्त भी रखी जानी चाहिये कि उच्च न्यायालय यह प्रमाणित करे कि विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है और वह सारवान प्रश्न है। इसलिये सभा से मेरा यह निवेदन है कि डा. अम्बेडकर ने जिस शाब्दिक परिवर्तन का सुझाव रखा है उसको स्थान देकर अनुच्छेद 110 स्वीकार कर लिया जाये। मेरे विचार से इस सम्बन्ध में कुछ भी मतभेद नहीं हो सकता है। यदि माननीय सदस्यों की यह इच्छा है कि इस विषय पर विचार किया जाये कि साधारण व्यवहार-विषयक मामलों में उच्चतम न्यायालय में अपील करने के अधिकार को सीमित किया जाये या न किया जाये अथवा साधारण अपराध-विषयक मामलों में (जिनके सम्बन्ध में इस समय बिना विशेष इजाजत लिये हुये अपील नही की जा सकती है), कम से कम कुछ मामलों में अपील करने का अधिकार होना चाहिये, तो इन विषयों पर उस समय विचार-विमर्श होना चाहिये जब कि सभा अनुच्छेद 111 और नवीन अनुच्छेद 112 (ख) पर विचार करे। यह एक आश्चर्य की बात है कि अनुच्छेद 110 के सम्बन्ध में अभी तक किसी वक्ता महोदय ने आपत्ति नहीं की। बिना किसी निरादर की भावना से प्रेरित हुये मैं यह कहना चाहता हूं कि पंडित ठाकुरदास भार्गव ने अनुच्छेद 111 और 112 (ख) से सम्बन्धित प्रश्नों को परोक्ष रूप से उपस्थित करने का प्रयास किया है। इसलिये मैं यह अनुरोध करता हूं कि अन्य प्रश्नों को उठा कर अनुच्छेद 110 के विषय को भ्रामक न बनाया जाये। मैं इसे फिर कहना चाहता हूं कि अनुच्छेद 110 से एक बहुमूल्य अधिकार प्राप्त होता है। पिछले बारह वर्षों के अनुभव से यही प्रमाणित होता है। माननीय सदस्यों को विदित है कि 1937 से, जब कि भारत सरकार का 1935 का अधिनियम प्रवर्त्तन में आया था, गवर्नर जनरल अथवा प्रान्तों के गवर्नरों ने जो अध्यादेश निकाले थे और केन्द्रीय सरकार अथवा प्रान्तीय सरकारों ने जो विधियां बनाई थीं उनके सम्बन्ध में विधि-प्रश्न किन मामलों में अन्तर्ग्रस्त था। प्रत्येक मामले में संघ-न्यायालय में अपील की गई थी जिसने इसका निर्णय किया था कि विचाराधीन विधि-न्यायसंगत है या नहीं और इस प्रकार उसने कई महत्त्वपूर्ण और सारवान प्रश्नों को हल किया था। ये प्रश्न ऐसे व्यवहार-विषयक मामलों के सम्बन्ध में उठे थे जिनमें 1,000 रु. से बहुत कम धनराशि अन्तर्ग्रस्त थी। इसी प्रकार कुछ अपराध-विषयक मामलों में यद्यपि दंडादेश केवल थोड़े काल के कारावास के सम्बन्ध में थे किन्तु उनमें बहुत ही महत्त्वपूर्ण सांविधानिक प्रश्न अन्तर्ग्रस्त थे। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि इस समय ऐसे मामलों में, जिनमें सारवान सांविधानिक प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो, अबाध रूप से अपील करने का जो अधिकार प्राप्त है उसे स्वतंत्र भारत के भावी संविधान में बनाये रखना चाहिये। मैं सभा से अनुरोध करता हूं कि इस विषय के इस अंग को ध्यान में रखा जाये। जहां तक अनुच्छेद 110 का सम्बन्ध है, मैं यह चाहता हूं कि मि. अहमद का संशोधन स्वीकार न किया जाये और अनुच्छेद को मूल रूप में स्वीकार कर लिया जाये।

अब मैं इस प्रश्न के दूसरे अंग के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करना चाहता हूं, जो साधारण व्यवहार-विषयक मामलों के बारे में है और जिसके विषय में अनुच्छेद 111

में उपबंध रखा गया है। मि. ऐन्थानी और कुछ अन्य माननीय सदस्यों ने यह कहा है कि इस संविधान के निर्माता व्यवहार-विषयक मामलों में वकालत करने वाले वकील हैं और व्यवहार-विषयक मामलों को ध्यान में रखते हुये उन्होंने उच्चतम न्यायालय के व्यवहार सम्बन्धी क्षेत्राधिकार को पहले के समान रहने दिया है अथवा अधिक विस्तृत कर दिया है। सौभाग्य से मैं इस संविधान का निर्माता नहीं हूं और यह आरोप मुझ पर नहीं लगाया जा सकता। किन्तु मैं मि. ऐन्थानी और कुछ अन्य वक्ताओं का ध्यान इस ओर दिलाना चाहता हूं कि साधारण व्यवहार-विषयक मामलों में उच्चतम न्यायालय में अपील करने के अधिकार को बहुत सीमित कर दिया गया है। वर्तमान व्यवहार प्रक्रिया संहिता के अधीन अपील के लायक व्यवहार-विषयक मामले में 10,000 रु. की धनराशि अन्तर्ग्रस्त होनी चाहिये किन्तु संविधान के मसौदे में यह धनराशि बढ़ा कर 20,000 रु. कर दी गई है। यदि आप आंकड़ों को देखें तो आपको ज्ञात हो जायेगा कि प्रिवी कौंसिल में अपील के लिये जो मामले जाते हैं उनमें से तीन-चौथाई मामलों में 10,000 रु. से लेकर 20,000 रु. तक की धनराशि अन्तर्ग्रस्त होती है और केवल 25 प्रतिशत मामले ही ऐसे होते हैं जिनमें 20,000 रु. से अधिक की धनराशि अन्तर्ग्रस्त होती है। इस प्रकार अनुच्छेद 111 के मसौदे के अधीन उच्चतम न्यायालय में अपील के लायक मामले 75 प्रतिशत कम हो जायेंगे। डा. अम्बेडकर और उनके सहकारियों पर जो आरोप लगाया गया है वह निराधार है। इसके अतिरिक्त जिन संशोधनों की सूचना मिली है किन्तु जो अभी उपस्थित नहीं किये गये हैं, उनको देखते हुये यह प्रतीत होता है कि कई माननीय सदस्यों की यह धारणा है कि 10,000 रु. की धनराशि को बढ़ा कर 20,000 रु. की धनराशि न निर्धारित करनी चाहिये। कुछ सदस्यों ने इस आशय के संशोधनों की सूचना दी है कि सीमा 15,000 रु. पर निश्चित की जाये। यह नहीं कहा जा सकता है कि व्यवहार-विषयक मुकदमों को बढ़ाने के लिये ही इस प्रकार के उपबंध संविधान में रखे गये हैं अथवा उद्देश्य यह है कि प्रिवी कौंसिल में इस समय जितने मुकद्दमे जाते हैं उनकी संख्या बनाये रखी जाये। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि मि. ऐन्थानी का मत, सभा में इस समय विचाराधीन अनुच्छेद 110 से तो असंगत है ही किन्तु साथ ही, किसी का निरादर न करते हुये, मैं यह कहना चाहता हूं कि वह बिना समझे बूझे उपस्थित किया गया है।

अनुच्छेद 111, धनराशि के परिवर्तन के अतिरिक्त, केवल व्यवहार-प्रक्रिया-संहिता की धारा 110 और धारा 109 की पुनरुक्ति है। ये धारायें 1861 से विधि के रूप में प्रवर्त्तन में रही हैं। उनके कुछ उपबंध कलकत्ते के उच्चतम न्यायालय के अधिकार पत्र में (अथवा उसके अधीन बनाये हुये नियमों में) मिलेंगे, जो 1773 में सम्राट की आज्ञा से प्रवर्त्तन में आया था। आपको इसी प्रकार के उपबंध मद्रास और बम्बई के उच्चतम न्यायालयों के अधिकार पत्रों में भी मिलेंगे, जो 19वीं शताब्दी के आरंभ में प्रवर्त्तन में आये थे। किन्तु अभी उच्च न्यायालयों के सम्बन्ध में, जब 1861 में उच्च न्यायालय विषयक अधिनियम स्वीकार किया गया और कलकत्ता, मद्रास, बम्बई और इलाहाबाद के उच्च न्यायालयों के एकस्व-पत्र जारी किये गये तो इसी प्रकार के उपबंध रखे गये और उसी वर्ष से व्यवहार प्रक्रिया संहिता में समाविष्ट किये गये और तब से प्रवर्त्तन में हैं। इसलिये जहां तक उन मामलों का सम्बन्ध है, जिनमें व्यवहार सम्बन्धी अपील का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होता है, अनुच्छेद

[डा. बक्शी टेकचन्द]

111 में तत्सम्बन्धी पहले के अधिकारों को सुरक्षित रखा गया है। साथ ही उसमें धनराशि का प्रश्न भी उठाया गया है और परोक्ष रूप से व्यवहार-विषयक मुकदमों की संख्या 60, 70 अथवा 75 प्रतिशत कम कर दी गई है। आठ वर्ष पूर्व जब मैंने आंकड़ों को देखा था तो इस प्रकार के मुकदमों की संख्या 75 प्रतिशत थी और मेरे विचार से इस समय भी यह संख्या बहुत कुछ वही है। वास्तव में पूर्वी पंजाब, उड़ीसा और मध्यप्रान्त जैसे छोटे प्रान्तों में अब बहुत कम ऐसे व्यवहार-विषयक मामले होंगे जो उच्चतम न्यायालय के सामने लाये जायेंगे। बम्बई, पश्चिमी बंगाल और मद्रास जैसे धनी प्रान्तों में कुछ अधिक मामले हो सकते हैं संयुक्त प्रान्त और बिहार के बहुत व्यवहार-विषयक मामले प्रिवी कौंसिल के सामने जाते थे क्योंकि वहां बड़ी-बड़ी तालुकदारियां और जमींदारियां थी किन्तु इन मामलों में से अधिकांश 20,000 रु. से अधिक की धनराशि अन्तर्ग्रस्त होती थी। परन्तु अब तालुकदारियों और जमींदारियों का उन्मूलन हो जाने पर इन प्रान्तों में भी इस प्रकार के मामलों की संख्या कम हो जायेगी। इसलिये व्यवहार-विषयक मुकदमेंबाजी के बढ़ जाने की कोई आशंका नहीं है।

अब मैं अपराध के विषय को उठाता हूं। मैं आपको बताऊंगा कि जिन व्यवहार-विषयक मामलों की अपील प्रिवी कौंसिल में होती है उनके सम्बन्ध में स्थिति क्या है। वर्तमान विधि के अधीन यह अधिकार-रूप में समाविष्ट नहीं है कि किसी मामले में प्रिवी कौंसिल में अवश्य ही अपील की जा सकती है चाहे वह मामला मृत्युदंड के सम्बन्ध में हो अथवा कालेपानी के दंड के सम्बन्ध में अथवा थोड़े समय के लिये कारावास-दंड के सम्बन्ध में अथवा चाहे उस मामले में कोई अत्यन्त सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो। किसी उच्च न्यायालय को यह शक्ति प्राप्त नहीं है कि वह प्रमाणित करे कि अमुक मामला प्रिवी कौंसिल में अपील करने के लायक है।

प्रिवी कौंसिल में उसकी विशेष इजाजत से ही किसी अपराध-विषयक मामले में अपील की जा सकती है। इस प्रकार की इजाजत साधारणतया नहीं दी जाती है भले ही कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो अथवा अन्याय हुआ हो। परन्तु यदि किसी मामले में 'प्राकृतिक-न्याय' के सिद्धांतों का खंडन हुआ हो तो प्रिवी कौंसिल हस्तक्षेप कर सकती है। इसकी परिभाषा कहीं भी नहीं की गई है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत क्या हैं? प्रिवी कौंसिल के निर्णयों में भी इनकी स्पष्ट व्याख्या नही की गई हैं। यदि आप उन विभिन्न मामलों की परीक्षा करें जिनके सम्बन्ध में विशेष इजाजत से अपील होने पर निर्णय हुआ है, तो आप देखेंगे (मैं बहुत आदरपूर्वक यह कह रहा हूं) कि उनमें कोई सुसंगति नहीं है। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि कब प्रिवी कौंसिल इजाजत देगी और कब नहीं देगी। मैं ऐसे मामलों की चर्चा करके सभा का समय नष्ट नहीं करना चाहता जिनमें एक विशेष प्रश्न उठाया गया था किन्तु प्रिवी कौंसिल ने इजाजत नहीं दी थी। कुछ वर्षों बाद जब वही प्रश्न फिर उठाया गया तो इस आधार पर इजाजत दे दी गई थी कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का खंडन हुआ है। यह सारी व्यवस्था बहुत ही अनिश्चित है। मैं कह नहीं सकता कि उच्चतम न्यायालय प्रिवी कौंसिल का अनुसरण करेगा अथवा अनुच्छेद 112 के अधीन विशेष इजाजत देने के लिये एक भिन्न प्रथा को निश्चित करेगा।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** क्या संविधान के अनुच्छेद 112 के अधीन उच्चतम न्यायालय को प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के आधार पर न्याय करने का वही अवसर प्राप्त होगा जो प्रिवी कौंसिल को प्राप्त होता था अथवा क्या उससे यह शक्ति ले ली गई है?

***डा. बक्शी टेकचन्द:** अनुच्छेद 112 इस प्रकार है:

> ''उच्चतम न्यायालय स्वविवेक से किसी वाद या विषय में दिये हुये किसी निर्णय, आज्ञप्ति अथवा अन्तिम आदेश की अपील के लिये विशेष इजाजत दे सकेगा, इत्यादि।''

इस प्रकार इस विषय का निर्णय उच्चतम न्यायालय के स्वविवेक पर छोड़ दिया गया है और यह कहा नहीं जा सकता कि वह इस सम्बन्ध में किस प्रथा को सुनिश्चित करेगा। यदि उसने प्रिवी कौंसिल की ही प्रथा का अनुसरण किया, जैसा कि वह अभी तक व्यवहार-विषयक मामलों में करता आया है तो उसी मामले के उदाहरण को (अर्थात् डिलेट के मामले को) सामने रखा जायेगा और सब कुछ अनिश्चित रहेगा। विशेष अपील की 99 प्रतिशत याचिकायें अस्वीकार होंगी जिससे व्यर्थ में बहुत समय और धन नष्ट होगा।

श्रीमान्, अब मैं मि. नजीरुद्दीन अहमद के संशोधन के सम्बन्ध में एक-दो बातें कहूंगा। यदि यह संशोधन स्वीकार किया गया तो व्यवहार-विषयक मामलों में इसका अनुच्छेद 111 पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। प्रत्येक व्यवहार-विषयक मामले में, चाहे उसमें कितनी ही धनराशि अन्तर्ग्रस्त क्यों न हो, उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकेगी, भले ही उच्च न्यायालय से प्रमाण-पत्र प्राप्त न हुआ हो। मेरे विचार से मि. नजीरुद्दीन अहमद नहीं चाहते कि ऐसा हो और न उनके संशोधन का समर्थन करने वाले माननीय सदस्य चाहते हैं कि ऐसा हो।

जो विभिन्न संशोधन उपस्थित किये गये हैं उनको दृष्टि में रखते हुये मसौदा-समिति ने उचित यह समझा कि डा. अम्बेडकर इस आशय का एक संशोधन उपस्थित करें कि संसद विधि द्वारा, उच्चतम न्यायालय को, उन शर्त्तों और परिसीमाओं के अधीन जो इस विधि में उल्लिखित हों, भारत राज्य-क्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय के अपने दंड-क्षेत्राधिकार के अधीन दिये हुये निर्णय अथवा दंडादेश की अपील लेने और सुनने की शक्ति प्रदान कर सकती है। मेरे विचार से यह पर्याप्त नहीं है। मेरे विचार से संविधान में कुछ ऐसे उपबंधों का समावेश करना आवश्यक है जिनसे वर्णित स्थिति में अपील करने का सीमित अधिकार मिल जाये। यदि आप सब कुछ संसद पर छोड़ देते हैं तो यह कहा नहीं जा सकता कि इस प्रकार की विधि कब बनेगी और उसका स्वरूप क्या होगा। इसका परिणाम यह होगा कि तीन वर्ष तक अथवा इससे अधिक समय तक इस प्रकार के मामलों में किसी भी उपबंध के अधीन उच्चतम न्यायालय में अपील न की जा सकेगी। इस प्रश्न के इस पहलू से माननीय सदस्यों को बहुत चिन्ता हुई है और उनमें से कुछ ने यह सुझाव रखा है कि कुछ प्रकार के मामलों में अपील करने के सम्बन्ध में संविधान में ही उपबंध रखा जाना चाहिये। मेरा यह निवेदन है कि इस प्रश्न पर अनुच्छेद 110 पर विचार करते समय वादानुवाद न होना चाहिये बल्कि अनुच्छेद 112 (ख) के उपस्थित किये जाने पर ही उस पर विचार किया जाना चाहिये।

[डा. बक्शी टेकचन्द]

कई मामलों में उच्च न्यायालयों ने मुक्ति-आदेश को उलट कर मृत्युदंड दिया है और माननीय सदस्यों के इनके सम्बन्ध में जो कुछ कहा है उसमें बहुत सार है। दो बातें और है। एक बात यह है, जैसा कि पंडित ठाकुरदास और अन्य कुछ माननीय सदस्यों ने कहा है, कि क्या हत्या के लिये सिद्धदोष प्रत्येक अभियुक्त को, चाहे उसे मृत्युदंड का अथवा कालेपानी का आदेश सुनाया गया हो, अपील करने का अधिकार आबाध रूप से प्राप्त होना चाहिये अथवा अपील का अधिकार केवल उन्हीं मामलों में होना चाहिये जिनमें मृत्युदंड सुनाया गया हो अथवा जिनमें कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो। दूसरी बात यह है कि ऐसे अन्य प्रकार के मामले हो सकते हैं जिनमें साधारण दंडादेश दिया गया हो किन्तु जिनमें बहुत महत्त्वपूर्ण तथा सार्वभौम विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो। इसके अतिरिक्त एक तीसरी श्रेणी के मामले भी हो सकते हैं जिनमें विधि के उपबंधों के निर्वचन के सम्बन्ध में, उदाहरणार्थ साक्ष्य-अधिनियम अथवा दंडप्रक्रिया-संहिता की कुछ धाराओं के सम्बन्ध में, उच्च न्यायालय में मतभेद हुआ हो। उदाहरणार्थ साक्ष्य-अधिनियम की धारा 27 के निर्वचन के सम्बन्ध में विभिन्न उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश वर्ग ने परस्पर विरोधी निर्णय किये हैं यद्यपि साक्ष्य-अधिनियम 1872 से प्रवर्त्तन में रहा है किन्तु इन 75 वर्षों में भी इस विषय का निर्णय नहीं हो सका है, लोकहित की दृष्टि से उच्चतम न्यायालय में इन प्रश्नों को अन्तिम रूप से हल कर देना चाहिये। इस प्रकार के मामले अनुच्छेद 112 के अन्तर्गत न आ सकेंगे। इस समय प्रिवी कौंसिल ऐसे मामलों के सम्बन्ध में विशेष इजाजत नहीं देती है, जिनमें प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का खंडन न हुआ हो। यह स्पष्ट है कि ऐसे मामलों में, उच्च न्यायालय के यह प्रमाणित करने पर कि अमुक मामला अपील के लायक है, अपील की इजाजत दी जानी चाहिये। मेरे विचार से ऐसे मामलों में अपील की इजाजत देने के सम्बन्ध में कोई मतभेद नहीं है। प्रश्न केवल यह है कि इसका संविधान में समावेश होना चाहिये अथवा संसद को इस सम्बन्ध में विधि बनाने की शक्ति दी जानी चाहिये। इस विषय पर उसी समय विचार करना उचित होगा जब अनुच्छेद 112 (ख) उठाया जाये चूंकि वह आज नहीं उठाया जा सकता है इसलिये मेरा यह सुझाव है कि मसौदा-समिति इस पूरे विषय पर फिर विचार करे और इसे यथोचित रूप में बाद को उपस्थित करे।

अनुच्छेद 110 इस विषय के सम्बन्ध में नहीं है और मेरा यह निवेदन है कि इसे डाक्टर अम्बेडकर के शाब्दिक संशोधन द्वारा संशोधित रूप में स्वीकार कर लिया जाये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि इस वादानुवाद में विषयान्तर हो गया है और मि. नजीरुद्दीन अहमद ने अपने संशोधन संख्या 1904 ओर 1907 में जो प्रश्न उठाया है उससे असम्बद्ध कई अन्य विषयों की चर्चा सदस्यों ने की है। हमारे सम्मुख केवल संशोधन संख्या 1904 है। उस संशोधन द्वारा मेरे मित्र मि. नजीरुद्दीन अहमद यह सुझाव रखना चाहते हैं कि अनुच्छेद 110 के उपखंड (1) के अन्त के कुछ शब्द अर्थात् ''इस संविधान का निर्वचन'' शब्द निकाल दिये जायें। मुझे खेद है कि ''इस संविधान का निर्वचन'' शब्दों को निकालने के लिये उन्होंने जो तर्क उपस्थित किया था उसे मैं ठीक-ठीक नहीं सुन सका। यद्यपि मैंने उनके शब्दों को

सुनने का बहुत प्रयास किया परन्तु मैं केवल इतना सुन पाया कि वे संशोधन संख्या 1904 को इस कारण उपस्थित कर रहे हैं कि पूर्वोक्त शब्दों से परिसीमित होता है और यदि इन्हें रहने दिया जायेगा तो किसी उपबंध के अधीन उच्चतम न्यायालय में ऐसे मामलों में अपील नहीं की जा सकेगी; जिनमें संविधान-सम्बन्धी विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त न हो।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** मुझे विश्वास है कि मेरा तर्क ठीक है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** प्रमाण-पत्र का प्रश्न नहीं उठता।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** कल आप उसे निकाल देना चाहते थे।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मेरे विचार से मेरे माननीय मित्र मि. नजीरुद्दीन अहमद उच्चतम न्ययालय विषयक इन अनुच्छेदों की योजना को सम्भवतः नहीं समझ पाये हैं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** यह आपका पुराना तर्क है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** हमने संविधान के मसौदे में ऐसे मामलों के लिये, जिनमें संविधान सम्बन्धी विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो और ऐसे मामलों के लिये, जिनमें इस प्रकार का कोई प्रश्न अन्तर्ग्रस्त न हो, अलग-अलग उपबंध रखे हैं। संविधान का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होने पर अपील करने के सम्बन्ध में अनुच्छेद 110 में उपबंध हैं। और ऐसे प्रश्नों के सम्बन्ध में जिनमें संविधान का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त न हो अनुच्छेद 111 में उपबंध है। सम्भवतः मि. नजीरुद्दीन अहमद यह भी नहीं समझ पाये हैं कि इन दो प्रकार की अपीलों के लिये पृथक व्यवस्था क्यों की गई है। इसलिये मैं इसे स्पष्ट करना चाहता हूं। अनुच्छेद 121 के सम्बन्ध में संशोधन उपस्थित किया जाने वाला है जो उन नियमों के सम्बन्ध में है जिन्हें उच्चतम न्यायालय बनायेगा। मैंने अनुच्छेद 121 के खंड (2) के सम्बन्ध में एक संशोधन की सूचना दी है जिसमें यह कहा गया है कि जब कभी उच्चतम न्यायालय में किसी ऐसे मामले की अपील की जाये, जिसमें कोई सांविधानिक विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो, तो कम से कम पांच न्यायाधीश उस पर विचार करेंगे किन्तु उस अपील के मामलों के सम्बन्ध में हमने उच्चतम न्यायालय को इसकी स्वतंत्रता दी है कि वह उन पर विचार करने के लिये न्यायाधीश मंडली को स्थापित करे और यह भी निश्चित करे कि नियमों के अधीन कितने न्यायाधीशों की आवश्यकता होगी। यह एक महत्त्वपूर्ण विभेद है अर्थात् उच्चतम न्यायालय के सम्मुख रखे जाने वाले किसी सांविधानिक मामले का निर्णय कम से कम पांच न्यायाधीश करेंगे और अन्य प्रकार के अपील के मामलों का निर्णय जो न्यायाधीश करेंगे उनकी संख्या नियम द्वारा विहित होगी। इसलिये मेरे मित्र की समझ में आ जायेगा कि यह बात नहीं है कि 'संविधान का निर्वचन' शब्द रहने से ऐसे मामलों की अपील न हो सकेगी जिनमें सांविधानिक विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त न हो और उनकी समझ में यह भी आ जायेगा कि हमने इन दो प्रकार की अपीलों के सम्बन्ध में दो पृथक् अनुच्छेदों में उपबंध क्यों रखे हैं। इन दो प्रकार के मामलों का निर्णय जो न्यायाधीश करेंगे उनकी संख्या में भी अन्तर है।

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

अब मैं इस प्रश्न को उठाता हूं कि उच्चतम न्यायालय को दंड-विषयक क्षेत्राधिकार प्राप्त होना चाहिये या नहीं, जिस पर बहुत वादानुवाद भी हो चुका है। मैं कह चुका हूं कि जहां तक अनुच्छेद 110 का और तद्विषयक मि. नजीरुद्दीन अहमद के संशोधन का सम्बन्ध है यह वादानुवाद अप्रासंगिक ही रहा है और इसका अनुच्छेद 110 के सम्बन्ध में हमारे निर्णय पर कोई प्रभाव न पड़ना चाहिये। किन्तु चूंकि बहुत वादानुवाद हुआ है, इसलिये मैं भी कुछ शब्द कहना चाहता हूं। सदस्य यह देखेंगे कि अनुच्छेद 110 में उच्चतम न्यायालय के सामने आने वाले ऐसे दंड विषयक मामलों के लिये उपबंध है, जिसमें संविधानिक विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो। इसलिये इस प्रकार भी दंड-विषयक मामलों की अपील की जा सकती है और अनुच्छेद 110 के अधीन जिन दंड-विषयक मामलों की अपील की जायेगी वे बहुत साधारण मामले होंगे।

इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 112 के अधीन उच्चतम न्यायालय को प्रिवी कौंसिल का क्षेत्राधिकार प्रदान किया गया है। इस समय मैं माननीय सदस्यों का ध्यान केवल इन शब्दों की ओर दिलाना चाहता हूं–''किसी व्यवहार-विषयक अथवा दंड-विषयक वाद या विषय में दी हुई आज्ञप्ति अथवा अन्तिम आदेश,'' इन शब्दों के अनुसार अनुचछेद 112 के उपबंधों के अधीन उच्चतम-न्यायालय, विशेष इजाजत के आधार पर, किसी अपराध-सम्बन्धी विषय पर भी विचार कर सकता है। मैंने यह देखा है कि आपराधिक वकीलों की यह प्रबल धारणा है कि एक उपबंध इस आशय का होना चाहिये कि...।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र:** अपराध-वेत्ता वकील।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मुझे खेद है। अपराध-वेत्ता वकीलों की यह प्रबल धारणा है कि जिस प्रकार अनुच्छेद 111 से उच्चतम न्यायालय को व्यवहार-विषयक मामलों की अपील सुनने की शक्ति मिलती है उसी प्रकार उसे अपराध-विषयक मामलों की अपील सुनने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये और यदि इस प्रकार की सभी अपीलों को सुनने की शक्ति न भी मिले तो कम से कम मृत्युदंड विषयक मामलों की अपील सुनने की शक्ति तो मिलनी ही चाहिये। मैं यह नहीं कहता कि उच्चतम न्यायालय को दंड विषयक क्षेत्राधिकार प्रदान करने के सम्बन्ध में जो तर्क उपस्थित किया गया है उसमें कुछ बल नहीं है परन्तु प्रश्न यह है कि उसे यह क्षेत्राधिकार प्रदान किस प्रकार किया जाये? क्या हमें संविधान में ही इस आशय का एक खंड रख देना चाहिये कि अमुक विषय के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकेगी अथवा हमें संसद को यह अधिकार देना चाहिये कि वह उच्चतम न्यायालय को अपराध विषयक मामलों में अपील सुनने का क्षेत्राधिकार प्रदान करे। इस समय मेरा यही मत है यद्यपि मैं निश्चित रूप से कुछ नहीं कहना चाहता। मैं अपने मस्तिष्क को खुला रखता हूं किन्तु मैं यह कहूंगा कि वह खाली नहीं है। इस समय यह व्यवस्था पर्याप्त होगी कि संसद को इसकी शक्ति दी जाये कि वह उच्चतम न्यायालय को अपराध-विषयक अपीलों के सम्बन्ध में क्षेत्राधिकार प्रदान कर सके। संसद इस सम्बन्ध में विचार कर सकती है और अनुसंधान भी कर सकती है कि उच्चतम न्यायालय

को अपराध विषयक मामलों में क्षेत्राधिकार प्रदान करने से वह कितना कार्य कर सकेगा। विशेषतया इसे ध्यान में रख कर कि यह देश कितने न्यायाधीशों के लिये धन-व्यय कर सकता है। मेरे विचार से अच्छा नहीं होगा कि इस विषय को संसद के निर्णय के लिये छोड़ दिया जाये क्योंकि इस सम्बन्ध में आंकड़ों के अनुसंधान का कार्य भी कुछ सीमा तक आवश्यक होगा। मेरा यह भी मत है कि मृत्युदंड के मामलों की अपील सुनने की शक्ति उच्चतम न्यायालय को प्रदान करने के लिये उपबंध रखने के स्थान पर अच्छा यह होगा कि मृत्युदंड को ही समाप्त कर दिया जाये (*वाह वाह*) मेरे विचार से इसी मार्ग का अनुसरण करना उचित होगा क्योंक इससे इस विवाद का अन्त हो जायेगा। आखिर इस देश की बहुत कुछ अहिंसा के सिद्धांत के प्रति ही निष्ठा है। अहिंसा की परम्परा इस देश के प्राचीन काल की देन है। भले ही इस देश के लोग उसे व्यवहार में चरितार्थ न कर सकें किन्तु वे उसे एक नैतिक आदर्श समझते आये हैं ओर उसके अनुसार आचरण करने का यथाशक्ति प्रयास करते रहे हैं। इसे दृष्टि मे रखते हुये इस देश के लिये उचित यही होगा कि वह मृत्यु-दंड का उन्मूलन ही कर दे।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र:** क्या सभी दंड-सम्बन्धी न्यायालयों का भी उन्मूलन कर दे?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरे विचार से हमें, अनुच्छेद 110 के सम्बन्ध में जो संशोधन उपस्थित किये गये हैं और मेरे मित्र मि. नजीरुद्दीन अहमद ने जो संशोधन उपस्थित किये हैं उनसे आगे न बढ़ना चाहिये।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधन पर मत लूंगा। प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 110 के खंड (1) में 'a State' (किसी राज्य) शब्दों के स्थान में 'the territory of India' (भारत-राज्यक्षेत्र) शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 110 के खंड (1) में as to the interpretation of this Constitution' (इस संविधान का निर्वचन) शब्द निकाल दिये जायें।''

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 110 के खंड (2) में 'as to the interpretation of this Constitution' (इस संविधान का निर्वचन) शब्द निकाल दिये जायें।''

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 110 के खंड (3) में 'not only on the ground that any such question as aforesaid has been wrongly decided, but also' (जैसे किसी

[अध्यक्ष]

पूर्वोक्त प्रश्न के अशुद्ध निर्णय हो जाने के आधार पर ही नहीं बल्कि) शब्दों के स्थान में 'on the ground that any such question as aforesaid has been wrongly decided and with the leave of the Supreme Court' (ऐसे किसी पूर्वोक्त प्रश्न के अशुद्ध निर्णय हो जाने के आधार पर, तथा उच्चतम न्यायालय की इजाजत से) शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 110, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 110 संशोधित रूप में, संविधान की अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 111

***अध्यक्ष:** पहला संशोधन, संशोधन संख्या 1911 है जो श्रीमती दुर्गाबाई के नाम से है।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई** (मद्रास : जनरल): चूंकि उसका आशय डा. अम्बेडकर के संशोधन से पूरा हो गया है इसलिये मैं उसे उपस्थित नहीं करना चाहती।

***श्री राजबहादुर:** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 111 के खंड (1) 'except the States for the time being specified in Part III of the First Schedule' (उन राज्यों के अतिरिक्त जो इस समय प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित है) शब्दों को निकाल दिया जाये।''

श्रीमान्, इन संशोधनों के सम्बन्ध में मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि उच्चतम न्यायालय की शक्ति तथा क्षेत्राधिकार-विषयक अनुच्छेदों का मसौदा उस समय तैयार किया गया था जबकि भारतीय राज्यों को समाविष्ट का तथा उनमें जनतंत्रात्मक व्यवस्था स्थापित करने का कार्य आरम्भ ही किया गया था और देश के सामने तथा मसौदा-समिति के सामने उनका वर्तमान स्वरूप नहीं था। इसलिये इस देश के सबसे ऊंचे अपील न्यायालय अर्थात् उच्चतम न्यायालय को कुछ मामलों के सम्बन्ध में क्षेत्राधिकार नहीं दिया गया था। अनुच्छेद 109 के अधीन उच्चतम न्यायालय को राज्यों के आपस के विवाद के मामलों के सम्बन्ध में क्षेत्राधिकार प्रदान किया गया है। किन्तु प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों के सम्बन्ध में यह क्षेत्राधिकार सीमित तथा निर्धारित कर दिया गया है। अनुच्छेद 111 में भारतीय प्रान्तों के उच्च न्यायालयों तथा भारतीय राज्यों के उच्च न्यायालयों की व्यवहार कार्यवाही में दिये हुये निर्णयों, आज्ञप्तियों और अन्तिम आदेशों में विभेद किया गया है। इसी प्रकार अनुच्छेद 112 के अधीन भी भारतीय राज्यों के लोगों के विरुद्ध विभेद की व्यवस्था की गई है। यह स्पष्ट है कि उच्चतम न्यायालय देश में अन्तिम अपील न्यायालय

होने के कारण उसे भारत के समस्त राज्य-क्षेत्र के समान क्षेत्राधिकार तथा प्राधिकार प्राप्त होना चाहिये। नि:संदेह उचित नहीं होगा कि भारतीय राज्यों को, जिनकी न्यायपालिका भारतीय प्रान्तों की न्यायपालिका के समान विकसित नहीं है, उच्चतम न्यायालय के अधीक्षता में अपनी न्यायपालिका के संगठन तथा विकास का अवसर मिलना चाहिये। यह सभी को विदित है कि भारतीय राज्यों के लोगों को अभी तक अपनी न्यायपालिकाओं से जो न्याय-प्रशासन प्राप्त रहा है वह भारतीय प्रान्तों के न्याय-प्रशासन की कोटि का नहीं रहा है। यह भी सभी को विदित है कि भारतीय राज्यों के लोग उस दिन की बाट जोह रहे हैं जब कि उच्चतम न्यायालय को भारतीय राज्यों के उच्च न्यायालयों के मामलों की अपीलें सुनने की शक्ति हो प्राप्त हो जायेगी। जब भारतीय राज्यों के जनसाधारण की यही इच्छा है तो अनुच्छेद 111 और 112 तथा अनुच्छेद 109 में भी किसी ऐसे विभेद को स्थान न देना चाहिये जिसका कुफल भारतीय राज्यों को भोगना पड़े। श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि इन शब्दों को अर्थात् ''उन राज्यों के अतिरिक्त जो इस समय प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित है'' शब्दों को समाविष्ट करने से भारत के राज्य-क्षेत्र में उच्चतम न्यायालय का क्षेत्राधिकार तथा प्राधिकार सीमित ही नहीं हो जाता किन्तु इनसे हमारे देश की एकता तथा भारतीय राज्यों के लोगों की जनतंत्रात्मक स्वतंत्रता भी खंडित हो जाती है। कुछ हद तक इनसे भारतीय राज्यों पर भारतीय राष्ट्र की सर्वसत्ताधारिणी संसद की सर्वसत्ता भी सीमित हो जाती है। मुझे तो यह प्रतीत होता है कि यदि सम्बन्धित अनुच्छेदों में हम इन शब्दों को रहने देते हैं तो इनके फलस्वरूप हमारे संविधान में पुरानी व्यवस्था के असह्य अवशेष बने रहेंगे। यह सभा तथा भारत-सरकार भारतीय राज्यों में जनतंत्रात्मक व्यवस्था स्थापित करने के लिये वचनबद्ध है। हम भी इन राज्यों को प्रान्तों के स्तर पर लाने के लिये वचनबद्ध हैं। इसलिये सभी प्रकार के रूप में दो और विभेदों को मिटाना आवश्यक है। हम नहीं चाहते कि भारत के नक्शे में लाल धब्बे बने रहें। हम चाहते हैं कि हमारा देश शीघ्रातिशीघ्र एक सूत्र में बंध जाये। मैं यह भी निवेदन करना चाहता हूं कि संविधान द्वारा जो मूलाधिकार प्राप्त होंगे अथवा देश के अन्य भागों के लोगों को जो अधिकार इस समय प्राप्त हैं उनके संरक्षण की भारतीय राज्यों के लोगों को अधिक आवश्यकता है। यह सभी को विदित है कि सामंतवाद की तथा अन्य प्रकार की शक्तियां जो भारतीय राज्यों के लोगों के पूर्ण स्वातंत्र्य के लिये घातक है, अभी समाप्त नहीं हुई है और इसलिये वहां के लोगों को आवश्यकता पड़ने पर अपने अधिकारों तथा अपनी स्वतंत्रताओं के संरक्षण के हेतु उच्चतम न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने का अवसर मिलना चाहिये। मैं यह भी बताना चाहता हूं कि यदि ये शब्द रहने दिये जायेंगे तो ''प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों'' को भारतीय संघ के अन्य राज्यों की अपेक्षा भिन्न तथा उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त होगी। उनका स्तर भारतीय प्रान्तों के स्तर से भी भिन्न हो जायेगा। इन राज्यों के लोग अन्तिम अपील अपने यहां के उच्च न्यायालय में ही कर सकेंगे न कि उच्चतम न्यायालय में। किन्तु इस स्थिति को बनाये न रखना चाहिये। चूंकि हमने देश में एकता स्थापित करने के सिद्धांत को स्वीकार किया है और उसके अनुसार देश के विभिन्न भागों में विभेद न होना चाहिये, इसलिये मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।

(संशोधन संख्या 1913 से लेकर 1916 तक उपस्थित नहीं किये गये।)

***डा. बक्शी टेकचन्द:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 111 के खंड (1) के उपखंड (क) में 'not less than twenty thousand rupees' (कम से कम बीस हजार रुपये) शब्दों के बाद 'or such amount as may be fixed by law by Parliament' (अथवा ऐसी धनराशि जिसे संसद विधि द्वारा निश्चित करे) शब्द रखे जायें।''

इस संशोधन के उद्देश्य के समझने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती है। अनुच्छेद 111 (1) (क) और (ख) के अधीन जो मामले आते हैं उनके सम्बन्ध में प्रिवी कौंसिल में अपील करने के लिये इस समय 10,000 रु. की जो धनराशि निश्चित है उसे इस अनुच्छेद के मसौदे में बढ़ा कर 20,000 रु. कर दिया गया है। यदि यह अनुच्छेद इसी रूप में स्वीकार कर लिया गया और संविधान का अंग बना लिया गया तो जब तक संविधान को ही संशोधित न किया जायेाग तब तक यह धनराशि उसी प्रकार बनी रहेगी और बाधक सिद्ध होगी। देश की स्थिति में परिवर्तन होने पर यह अनुभव किया जा सकता है कि या तो यह धनराशि बहुत अधिक है या बहुत कम है और इसे बढ़ाने अथवा कम करने की आवश्यकता है। किन्तु बिना संविधान को संशोधित किये हुये उसमें परिवर्तन करना सम्भव न होगा। इसमें बहुत समय लगेगा और कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। सम्पत्ति का मूल्य बढ़ जाने से ही यह धनराशि बढ़ाई जा रही है क्योंकि बीस वर्ष पूर्व जिस सम्पत्ति का मूल्य 10,000 रु. था वह अब 20,000 रु. हो गया है। किन्तु स्थिति में परिवर्तन हो सकता हैं। कई कारणों से यह मूल्य घट सकता है और तदनुसार धनराशि को भी कम करने की आवश्यकता पड़ सकती है। अथवा मूल्य बढ़ भी सकता है और इस धनराशि को बढ़ा कर 20,000 रु. से लेकर 30,000 रु. तक अथवा 40,000 रु. या इससे अधिक निश्चित करने की आवश्यकता पड़ सकती है। इसलिये स्थिति के अनुसार कार्य करने के लिये संसद को इस अनुच्छेद में विधि द्वारा आवश्यक परिवर्तन करने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये। इसी कारण इस संशोधन का प्रस्ताव उपस्थित किया गया है कि इस अनुच्छेद में ''अथवा ऐसी धनराशि जिसे संसद विधि द्वारा निश्चित करे'' शब्द प्रविष्ट किये जायें।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''संशोधनों की सूची की संख्या 1916 से लेकर 1919 तक के संशोधनों के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 111 के खंड (1) के उपखंड (क) में 'twenty thousand rupees' (बीस हजार रुपये), शब्दों के बाद 'or such other sum as may be specified in this behalf by Parliament by law' (अथवा ऐसी धनराशि जो संसद विधि द्वारा इस सम्बन्ध में निश्चित करे) शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

(संशोधन संख्या 1918 उपस्थित नहीं किया गया।)

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 111 के खंड (1) के उपखंड (क) में 'twenty thousand' (बीस हजार) शब्दों के स्थान में 'fifteen thousand' (पन्द्रह हजार) शब्द रखे जायें।''

श्रीमान्, इस समय दस हजार रुपये की धनराशि निश्चित है, किन्तु संविधान के मसौदे में बीस हजार रुपये की धनराशि निश्चित करने का प्रस्ताव है। मैंने बीच के मार्ग का अनुसरण किया है और पन्द्रह हजार रुपये की धनराशि निश्चित करने का प्रस्ताव रखा है। मैं पहले की धनराशि को बढ़ाना चाहता हूं क्योंकि मुद्रा का मूल्य गिर गया है। मेरा यह निवेदन है कि किसी मामले के अपील के लायक होने के लिये उसमें अधिक धनराशि अन्तर्ग्रस्त होने की आवश्यकता न होनी चाहिये। इससे मनमाने ढंग से न्याय होता है क्योंकि वह धनी और निर्धनों के विभेद के आधार पर किया जाता है। यदि विभेद की आवश्यकता ही है तो केवल पहले की धनराशि को कुछ बढ़ा देना चाहिये। उच्चतम न्यायालय स्वविवेक से कुछ मामलों में अपील करने की विशेष इजाजत दे सकता है। किन्तु इस विषय को संसद को सौंपने के उद्देश्य से डा. बक्शी टेकचन्द और डा. अम्बेडकर ने जो संशोधन उपस्थित किये हैं उनसे मैं पूर्णतया असहमत हूं। मेरा यह निवेदन है कि अपने संविधान में हम कई बातों का विस्तृत विवरण दे रहे हैं। मैं डा. अम्बेडकर के समान यह नहीं कहता कि यह विवरण तर्कसंगत नहीं है किन्तु है वह विस्तृत विवरण ही जिसके फलस्वरूप संविधान किसी विभाग के प्रतिवेदन का रूप धारण कर लेगा। इसलिये इस महत्त्वपूर्ण विषय के सम्बन्ध में, जिसके अधीन अपील करने का अधिकार प्राप्त होगा अथवा न होगा, हमें अपने उत्तरदायित्व की उपेक्षा करके उसे संसद को न सौंपना चाहिये। कठिनाई यह होगी कि सभा की भावना के आधार पर अथवा सभा के सदस्यों की अभिरुचि के अनुसार आये दिन यह कहा जायेगा कि मूल्य बढ़ रहा है अथवा गिर रहा है। हम इसे नहीं मान सकते कि यह सभा इसी प्रकार बनी रहेगी अथवा इसके विभिन्न दलों की सदस्य-संख्या हमेशा वही रहेगी जो इस समय है। इसलिये इस धनराशि में किसी समय की भावना के कारण परिवर्तन होने के स्थान पर अच्छा यह होगा कि इसे संविधान में ही निश्चित कर दिया जाये। आप उसे दस हजार रुपये रखे अथवा पन्द्रह हजार अथवा बीस हजार परन्तु उसे संविधान में अवश्य निश्चित कर देना चाहिये ताकि उसे प्रायः परिवर्तित न किया जा सके और यदि परिवर्तित करने की आवश्यकता हो तो संविधान को ही संशोधित करके परिवर्तित किया जा सके। इस धनराशि का आधार सुदृढ़ होना चाहिये। इसी कारण मैं इस संशोधन को उपस्थित कर रहा हूं।

(संशोधन संख्या 1920 और 1921 उपस्थित नहीं किये गये।)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान् मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 111 के खंड (1) में निम्नलिखित परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'Provided that no appeal shall lie to the Supreme Court from the Judgment, decree or order of one Judge of a High Court or of one judge of a Division Court thereof, or two or more Judges of a High Court or of a Division Court constituted by two or more Judges of a High Court where such judges are equally divided in opinion and do not amount in number to a majority of the whole of the Judges of the High Court at the time being.'

[माननीय डा. बी.आर अम्बेडकर]

(परन्तु उच्चतम न्यायालय में किसी ऐसे उच्च न्यायालय अथवा कमिश्नरी के न्यायालय के एक न्यायाधीश के निर्णय, आज्ञप्ति अथवा आदेश की अपील न हो सकेगी, जिसमें उच्च न्यायालय के दो या दो से अधिक न्यायाधीश हों और इन न्यायाधीशों का मत दोनों पक्षों में समान रूप से विभाजित हो और किसी एक पक्ष के न्यायाधीशों की संख्या उच्च न्यायालय के उस समय के कुछ न्यायाधीशों के बहुमत से अधिक न हो।)''

***अध्यक्षः** इसके सम्बन्ध में एक संशोधन है, अर्थात् संशोधन संख्या 151, जो पंडित ठाकुरदास भार्गव के नाम से है। क्या आप उसे उपस्थित कर रहे हैं?

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** जी नहीं, श्रीमान्, मैं उसे उपस्थित नहीं कर रहा हूं।

***अध्यक्षः** अब हम समाप्त करते हैं और सभा सोमवार के आठ बजे तक के लिये स्थगित की जाती है।

इसके पश्चात् सभा सोमवार, 6 जून 1949 के आठ बजे तक के लिये स्थगित हो गई।